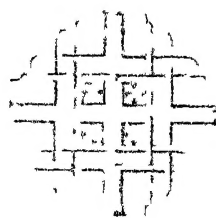


सत्ता स्वरूप





रचयिता—
स्व० पं० भागचन्द्र जी

* जैनदर्शन के तृतीय वर्ष का उपहार *

सत्ता स्वरूप

रचयिता -

स्व० पं० भागचन्द्रजी छाजेड़

प्रकाशक—

श्रीमान सेठ लल्लूमलजी सेठी मालिक फर्म :—

आमचंद केसरीमल गया।

प्रथमबार १२००

ज्येष्ठ वीर सं० २४६२

मूल्य स्वाध्याय

परिचय—

भारतवर्षमें जिस समय जिस भाषा का प्राधान्य रहा उस समय उसी भाषामें जैन ग्रंथोंका निर्माण होता रहा। प्राकृत, संस्कृत भाषा के जैनग्रन्थ तो प्रायः पाये ही जाते हैं किन्तु उन अपभ्रंश भाषाओंमें भी कई जैनग्रंथ उपलब्ध हैं जिनका कि व्यापक प्रचार उनके समय में रहा होगा।

समयानुसार जब हिन्दी भाषा प्रचारमें आई तब जैन विद्वानों ने गद्य पद्य रूपमें हिन्दी भाषाके कई मौलिक ग्रंथ बनाये और अनेक संस्कृत, प्राकृत ग्रन्थोंकी हिन्दी भाषामें टीका की। हिन्दी भाषा में ग्रंथ निर्माण करने वालोंमें पं० बनारसीदास जी, भूधरदास जी टोडरमल जी, भगवती दासजी आदि विद्वान गणनीय हुये हैं जिन के लिखे हुये अनेक ग्रन्थ इस समय उनकी विद्वत्ता का परिचय दे रहे हैं।

इन्हीं विद्वान लेखकों में प्रातःस्मरणीय श्रीमान पं० भागचन्द्र जी हुये हैं। आप ओसवाल जातिके नररत्न थे, छाजेड़ आपका गोत्र था। पं० बनारसीदासजी, भगवतीदास जी यति नयनसुख जी आदि ओसवाल विद्वानों के समान आपभी दिगम्बर मतानुयायी थे और संस्कृत भाषाके अच्छे विद्वान थे। अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिक के आप मर्मज्ञ थे।

पं० भागचन्द्र जी ने महावीराष्टक (संस्कृत) एवं अनेक सरस सारपूर्ण पदोंकी रचना की जिसमें कि आपके प्रशंसनीय कवित्व

का परिचय मिलता है। उनके सिवाय आपने यह 'सत्तास्वरूप ग्रंथ निर्माण किया है। इस ग्रन्थके विषयमें कुछ लिखना व्यर्थ है क्योंकि यह आपके सामने विद्यमान ही है। परीक्षा प्रधानता के ढंगसे पं० भागचन्द्र जी ने इसको लिखा है। आप इसी बीसवीं विक्रम शताब्दीके प्रारम्भके विद्वान हैं अतः आपकी भाषा ढूंढारी और खड़ी बोलीका मिश्रण रूप है।

ग्रंथ सम्पादनके लिये एकसे अधिक प्रति प्राप्त न हो सकी इस कारण कतिपय त्रुटियां रह गई हैं।

गया निवासी स्व० सेठ केशरीमलजी सेठी अच्छे धर्मात्मा विद्याप्रेमी और साधर्मीवत्सल थे। जिन सज्जनोंको उनसे मिलने का सौभाग्य हुआ है वे उनकी सरलता, सज्जनता की प्रशंसा अवश्य करते हैं। उनके सुयोग्य सुपुत्र श्रीमान सेठ लल्लूमल जी भी अपने पिताके अनुरूप सरल, सज्जन, धार्मिक एवं जैन सिद्धान्तज्ञाता महानुभाव हैं। आपने अपने पिताजी के स्मरण में इस ग्रंथका प्रकाशन कराकर जैनदर्शन के ग्राहकों को उपहार रूप भेंट किया है। इस उदारता के लिये भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ आपका आभारी है।

श्रीमान पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ, सम्पादक जैन दर्शन ने प्रेस कापी लिखा कर भेजने की कृपा की है, एतदर्थ आपको भी धन्यवाद है।

ज्येष्ठ सुदी त्रयोदशी बुधवार
वीर सम्वत २४६२
३ जून १९३६

अजितकुमार जैन
मुलतान सिटी

सत्ता स्वरूप



—पूज्य पिता श्री० केशरीमलजी का—

संक्षिप्त जीवन परिचय

आपका जन्म मु० दांता पो० वाटवा जिला जयपुर में मि० आश्विन सु० १४ वि० सं० १९१९ को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीमान सेठ ऋषभचन्द जी सेठी तथा भ्राता का नाम नेमिचन्द्र जी और भगिनी का नाम चन्द्री बाई था। अपने दादा जी सेठ चमनरामजी के स्वर्गारोहण होजाने पर गया जी चले आये और पूज्य पिता जी के पास काम करते हुये अपने व्यापार में उन्नति प्राप्त की। एक बार पू० ऋषभचंदजी के अत्यन्त बीमार हो जाने पर और बचने की आशा न रहने पर आपने ११०००) का दान किया। उक्त दान के करते ही पूज्य पिता जी की बीमारी क्रमशः शान्त होने लगी और कुछ महीनों में पूर्ण निरोगता प्राप्त कर ली। अपनी जन्मभूमि में जो प्राचीन जैन मंदिर जीर्ण अवस्था में था उसे दो मंजिला नये रूप में परिवर्तित करके जीर्णोद्धार कराया। इस पवित्र कार्य में कुछ दुष्ट पुरुषों द्वारा बाधा स्वरूप मुकद्दमे हो गये और जयपुर राज्य में भी अनेक मुकद्दमे लड़ने पड़े जिसमें पू० स्व० पं० भोलीलालजी की अमूल्य सहायता के बल पर विजय प्राप्त हुई। किन्तु उन स्वर्गीय आत्मा की सलाह से उस समय जीर्णोद्धार का कार्य रोक देना पड़ा। पुनः दांता की बड़ी ठकुरानी साहबा के श्राद्धार्थ गया में पधारने पर उनसे इस विषय में परामर्श हुआ और जीर्णोद्धार का काम पूर्ण करने के लिये माननीया रानी

साहिबा का पूर्ण आग्रह हुआ। अतः उनकी आज्ञानुसार वहां जाकर उक्त मंदिर का काम सं० १९६१ में पूरा किया। पूज्य पिता जी के कठोर आदेशानुसार उसी वर्ष दाँता के चारों ओर प्लेग की बीमारी रहने पर भी श्रीमान स्वर्गीय पं० भोलीलाल जी, श्रीमान पं० जिनेश्वरदास जी, श्रीमान बाबा बाल ब्र० दुलीचंद जी आदिके परामर्श से माघ सुदी ५ के मुहूर्त पर मंदिरमें श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिष्ठा कराई। इस कार्यमें आपने करीब १५०००) पंद्रह हजार रुपये खर्च किये।

सं १९६२ में असाढ़ के महीने में आपके पूज्य पिता जी का समाधि पूर्वक मरण हो गया। गृहस्थाश्रम का सारा भार आपके शिर आगया। उसे आपने जीवनपर्यन्त अत्यन्त धैर्य के साथ चलाया जो अनुकरणीय है।

आपने सं०१९६३ में अजमेर होते हुवे तारंगा, आबू, गिरनार पावागढ़, शत्रुंजय, गजपंथा, मांगीतुंगी आदि क्षेत्रों की वन्दना सकुटुम्ब की जिसमें करीब ५ माह लगे।

बंगालसरकार द्वारा श्रीसम्मेदशिखर पर्वत पर बंगले बनाने के आदेश से दिगम्बर और श्वेताम्बर सारी जैन समाज में असंतोष जनक एक तीव्र लहर पैदा हो गई थी। उसके प्रतीकारार्थ अनेक प्रकार के उपाय सोचे जा रहे थे। जगह २ चंदे हो रहे थे। यहां की पंचायत से भी उस समय ५०००) चंदा हुवा था उसमें आपने अत्यन्त हर्ष के साथ सब से प्रथम १००१) एक हजार एक रुपये की रकम प्रदान की।

स्वर्गीय पं० गोपालदास जी के स्वर्गारोहण के पश्चात श्री गोपाल विद्यालय के ध्रौव्य फंड के लिये एक डेपुटेशन भ्रमण

कर रहा था। गया में आने पर उसका यथोचित सत्कार किया और ६०१) की रकम ध्रौव्य फंड में प्रदान की। एवं प्रत्येक विद्या प्रचारक संस्थाओं को बराबर समय २ पर दान दिया करते थे। जो कि आपके विद्या प्रेम का परिचायक है।

जात्युत्थान के सामाजिक कार्यों मे भी आपको प्रेम था। आपका महासभा से घनिष्ठ संबन्ध रहा है। आप उस के कितने ही अधिवेशनों में सम्मिलित हुवे और यथाशक्ति योग दिया।

गत ब्यावर में श्री बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव पर होने वाले महासभा के नैमित्तिक अधिवेशन और भा० दि० जै० खण्डेलवाल सभा के अधिवेशन में सकुटुम्ब सम्मिलित हुवे थे। वहां से भा० खेतशीदासजी आदि धर्मात्माओं का समागम पाकर गोमटेश्वर स्वामी के महामस्तकाभिषेक में शामिल होने तथा आचार्य श्री शांतिसागरजी आदि के दर्शनों को सकुटुम्ब रवाना हुये। बम्बई होते हुये श्रवणबेलगोला पहुंचे इस यात्रा में बाहुबलि स्वामी और आचार्य संघ का दर्शन हुआ तथा मूडबद्री कारकल आदि क्षेत्रों की वंदना की।

स्थानीय मंदिर के छोटे होने के कारण बड़ा मंदिर बनाने की बहुत दिनों से आवश्यकता थी, जिसे बनाने के लिये स्थानीय पंचायत में बराबर बीस २ हजार के ३ चंदे हुवे उसमें भी आपने २१०१ की रकम बराबर हर चिट्ठे में हर्ष और उत्साह के साथ प्रदान की और सं० १९८३ में श्री बिम्ब प्रतिष्ठा होकर श्री जिनेन्द्रदेव की नये मंदिर में स्थापना हुई। आप उस मेले की प्रबन्धक कमेटी के सभापति थे।

स्थानीय विद्यालय के ध्रौव्य फंड में आपने २५०१) रु० प्रदान किया था और विद्यालय प्रबन्धकारिणी के अंतिम समय तक सभापति रह कर आपने कार्य किया।

आप कलकत्ता बंगाल प्रांतिक खंडेलवाल सभा के प्रथम अधिवेशन के सभापति नियत किये गए थे। वहां का कार्य आपने निर्भीकता पूर्वक समाप्त किया तथा ५०१) सभाको प्रदान किये।

वहां से आकर आप अत्यन्त बीमार हो गये, निरोग होकर उठने की आशा जाती रही। ऐसी अवस्था में आपने १५०११) का दान किया और उसी समय से आपको आरोग्य लाभ होने लगा। कुछ ही महीनों में आप निरोग हो गये। आपने उपरोक्त रकम से अपना मकान ट्रस्ट रजिष्ट्री करा दिया। जिसका भाडा उस समय करीब १२५ रु० महीना आता था।

आपने सं० १९९० में श्रावन सु० १५ को प्रातः काल समाधि और अत्यन्त शान्ति पूर्वक श्रीमान प्यारेलाल जी व० कस्तूरचंदजी आदि की उपस्थिति में स्वर्गारोहण किया। आप करीब दश महीने बीमार रहे। अबकी बार आपको अपना मरण निश्चय हो गया था इसी लिये आपने सत्संग का लाभ बराबर रखा। उदासीनाश्रम के उदासीनों को भी बुलाया ज्ञानाभ्यास, तत्वचर्चा, व्रत संयमादिक की वृद्धि करते हुवे अपने प्राणों का विसर्जन किया।

इस प्रकार उनके जीवन की संक्षिप्त घटना है। जो पाठकों के अवलोकनार्थ प्रकट की जाती है। आशा है पाठक शिक्षा ग्रहण करेंगे॥

—विनीत पुत्र ललूमल जैन सेठी, गया

श्री वीतरागाय नमः

सत्तास्वरूप

मंगलमय मंगल करण वीतराग विज्ञान
नमों ताहि यातें भये, अरहंतादि महान ॥



स जीवको सुख इष्ट है सो सुख सर्व कर्मों के नाश से प्राप्त होता है, और से प्रकार नहीं होता। कर्मोंका नाश चारित्र से होता है और चारित्र है वह प्रथम सम्यक्त्व अतिचार रहित होय तब चारों अनुयोगों के द्वारा मोक्षमार्गमें प्रयोजन भूत रकम तिनको संशय विपर्यय, अनध्यवसाय आदि रहित यथार्थ ज्ञान होय तब यथार्थ चारित्र होय है। तब आलस्य, मद आदि समस्त दूर होय जाय है। शास्त्रनि को श्रवण, धारण, विचारणा आम्नाय अनुप्रेक्षा को लिये अभ्यास करे। तातें सर्व कल्याण को मूल कारण एक आगमको यथार्थ अभ्यास है। तहां इस संसार वन विषै भ्रमण अनादिकाल का है। इसलिये जीवन के शास्त्राभ्यास होनेका अवसर पावना महान दुर्लभ है। क्योंकि संसारमें बहुत काल तो एकेन्द्रिय पर्याय में पूर्ण होय है, वहां तो केवल एक

स्पर्शन इन्द्रिय का ही किञ्चित् ज्ञान है। बहुरि वे इन्द्रिय आदि असैनी पंचेन्द्रिय पर्यन्त तो उनके विचार करने की शक्ति ही नाहीं। बहुरि नरक गति मे शास्त्राभ्यास होनेका सम्बन्ध ही नाहीं, कोई जीवके पूर्व वासनातैं अंतरंग में होय तो कदाचित होय। बहुरि देवगतिमें नीच जातिके देव हैं, वे तो विषय सामग्री जो मिली है तिनमें ही अत्यन्त आसक्त हैं। तिनके तो धर्म-वासना ही नाहीं उत्पन्न होय है। और ऊंच पदवाले कोई देव हैं तिनके धर्मवासना उपजे, ते विशेषपने मनुष्यादि पर्यायनि में धर्म साधन की योग्यता सेती ही ऐसे पद पावे हैं। बहुरि मनुष्य पर्यायनि विषै बहुत जीव तो लब्ध्यपर्याप्तक हैं, तिनकी तो आयु स्वास के अठारहवें भाग मात्र है। सो यह जीव तो पर्याप्ति पूर्ण कर ही नाहीं, और कदाचित तुच्छ आयु पावे तो गर्भ में या बाल्यावस्था में ही मरण हो जाय है और बड़ी आयु पावे तो शूद्र आदि नीच कुलनि में उपजे, और ऊंचा भी कुल पावे तो इन्द्रियानि की परिपूर्णता वा शरीर की निरोगिता पावना दुर्लभ है, और उस से भले ग्राम में उपजना दुर्लभ है, तहां भी धर्म वासना का होना महा दुर्लभ है। बहुरि तहाँ भी साँचे देव, शास्त्र गुरुनि का सम्बन्ध मिलना महा दुर्लभ है, तहां भी पूजा दान शील संयमादि व्यवहार धर्मका वासना तो कदाचित् उपज भी आवे है परन्तु जिससे अनादि मिथ्यात्व रोग मिटै ऐसे निमित्त का मिलना उत्तरोत्तर महा दुर्लभ जानि इस

निकृष्ट काल में जिन धर्म का यथार्थ श्रद्धानादि होना तो कठिन है ही, परन्तु तत्व निर्णय रूप धर्म है सो बाल, वृद्ध, रोगी, निरोगी, धनी निर्धन, क्षेत्री, कुक्षेत्री इत्यादि सर्व अवस्था में होने योग्य है। इस लिये जो पुरुष अपने हित के वांछक हैं तिनको सब से प्रथम यह ही तत्व निर्णय रूप कार्य करना योग्य है। सो ही कहा है :—

न क्लेशो न धनव्ययो न गमनं देशान्तरे प्रार्थना।
केषांचिन्न बलक्षयो न तु भयं पीडा न कस्माच्च न॥
सावद्यं न न रोगजन्मपतनं नैवान्यसेवा नहि।
चिद्रूपं स्मरणे फलं बहुतरं किन्नाद्रियन्ते बुधाः॥

बहुरि जे तत्व निर्णय के सन्मुख न भये हैं उनको उलाहना दिया है।

साहीने गुरुजोगे जेण सुणंतहि धम्म वयणाई।
ते धीठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भव भय विहीना॥

तहां जे शास्त्राभ्यास के द्वारा तत्व निर्णय तो न करे हैं। अर विषय कषाय के कार्य तिन विषैं ही मगन हैं ते तो अशुभोपयोगी मिथ्या दृष्टि हैं अर जे सम्यक्त्व के बिना पूजा, दान, तप, शील, संयमादि व्यवहार धर्म में मगन हैं ते शुभोपयोगी मिथ्या दृष्टि हैं। तातैं तुम भाग्य उदयतैं मनुष्य पर्याय पाई है तो सर्व धर्म को मूल कारण सम्यक्त्व अर ताका मूल कारण तत्व निर्णय, ताका मूल कारण शास्त्राऽभ्यास सो करना अवश्य ही योग्य है। अर जे ऐसे अवसर को व्यर्थ खोवे हैं उनपर करुणा बुद्धिमान करे हैं। सो

ही कहते हैं—

प्रागेव दुर्लभा सुष्ठु दुर्लभा साऽन्यजन्मनि ।

तां प्राप्य ये प्रमाद्यन्ते ते शोच्याः खलु धीमताम् ॥

इस लिये जिनको सच्चा जैनी होना है, तिनको शास्त्र के आश्रय तत्व निर्णय करना योग्य है। अर जे तत्व निर्णय तो न करे हैं अर पूजा, स्तोत्र, दर्शन, त्याग, तप, वैराग्य, संयम संतोष आदि सर्व कार्य करे हैं, सो उनके सर्व कार्य असत्य हैं। तातैं आगम का सेवन, युक्ति को अवलम्बन, परम्पराय गुरू उपदेश, स्वानुभव इनके द्वारा तत्व निर्णय करना योग्य है। तहां जिन-वचन है सो चारों अनुयोगमय है सो रहस्य जाननों योग्य है। तहां जिनवचन तो अपार है इनका पार तो गणधर देव भी न पायो। तातैं इनमें जो मोक्षमार्ग का प्रयोजन भूत रकम है ते तो निर्णय करके अवश्य जाननीं योग्य है। सो ही कहा है—

अंतोणत्थि सुइणं कालो थूवोयपंच दुम्मेहा।

तांहि वर सिक्खियव्वं, जे जरमरणक्खयं कुणाइ ॥

तहां मोक्षमार्ग को प्रयोजन भूत रकम कौन कौन हैं सो दिखलाइये है—जिनधर्म १ जिनमत २ देव ३ कुदेव ४ गुरू ५ कुगुरू ६ शास्त्र ७ कुशास्त्र ८ धर्म ९ कुधर्म १० अधर्म ११ हेय १२ उपादेय १३ तत्त्व १४ अतत्व १५ कुतत्व १६ मार्ग १७ कुमार्ग १८ अमार्ग १९ संगति २० कुसंगति २१ संसार २२ मोक्ष २३ जीव २४ अजीव २५ आस्रव २६ संवर २७ निर्जरा २८ बंध २९ मोक्ष ३०

जीव ३१ पुद्गल ३२ धर्म ३३ अधर्म ३४ आकाश ३५ काल ३६ वस्तु ३७ द्रव्य ३८ गुण ३९ पर्याय ४० द्रव्य पर्याय ४१ अर्थ पर्याय ४२ व्यञ्जन पर्याय ४३ असमान जाति ४४ विभाव व्यञ्जन द्रव्य पर्याय ४५ स्वभाव व्यञ्जन पर्याय ४६ स्वभाव अर्थ पर्याय ४७ शुद्ध अर्थ पर्याय ४८ अशुद्ध अर्थ पर्याय ४९ सामान्य गुण ५० विशेष गुण ५१ ऐसे सत्ता निश्चय करि अब इनको स्वरूप कहिए है ।

तहां सर्वज्ञ के व्यवहार, निश्चय, रूप दोय प्रकार की कथनी के आश्रय दोय जाति, गुण पाइये है, वा बाह्याभ्यन्तरपणातें गुण दोय प्रकार के हैं अथवा निःश्रेयस, अभ्युदय के भेदसे गुण दोय प्रकार के हैं। बहुरि वचन विवक्षा मे संख्यात गुण पाइये हैं अर वस्तु स्वरूप अपेक्षा करि अनंत गुण पाइये है । सो इनका सत्यार्थज्ञान करि यथावत् जाने स्वरूप भासेगो । जातें यह जीव अनादिकालसे संसार में भ्रमतो मिथ्याबुद्धि करि पर्याय के प्रपञ्च को सांचो जानि मगन हुवो प्रवर्तें है। परन्तु दुःखकी पीड़ा तो बनी रहै है उस करि तड़फि तड़ाफ अनेक उपाय करे है; परन्तु आकुलता इच्छा रूप जो दुःख सो अंशमात्र भी न घटे है। जैसे मिरगी को रोग कबहुं तो बहुत प्रकट होय, कबहुं थोरो प्रगट होय और रोग अंतरंग में हमेशह बनो हुओ रहे है। जब रोगी के पुण्योदयरूप काललब्धि आवे, आपके उपायतें सिद्धि न हुई जाने तिनको झूँठी मानें, तब सांचा उपाय करनेका अभिलाषी होय,

जो मुझको सांचो उपायको निश्चय करि—मेरो रोग जिस प्रकार मिटै—सो औषधि लेना। तहाँ पहिलो उपाय कियो थो पर सांचो नहीं सो पीछे सांचो उपाय करि रोग जिसको गयो होय तिस वैद्य तें सांचो उपाय जान्यो जाय। जातैं जिसको रोग, औषधि, पथ्य निरोगिता को स्वाश्रित सम्पूर्ण ज्ञान होय सो ही सांचो वैद्य है और वह ही औरनि को ठीक तौर पर बतावै। तातैं जिनको मिरगी के दुःखसे भय उपज्या होय, वा सांचा रोग भास्या होय, वा सांचो औषधि वैद्य की बताई आवेगी ऐसो जांचपनो आयो होय, वा जिनके मिरगी रोग गया है तिन की सूरत देख वाके उत्साह उपज्यो होय. सो इन चार अभिप्राय को लिये हुये वैद्यके घर जाय। तहां प्रथम तो वैद्यकी आकृति वा कुल वा अवस्था वा निरोगिता को चिन्ह वा प्रकृति वगैरह तिन सर्व ही प्रत्यक्ष जानै अथवा अनुमान से वा किसी के कहने से भले प्रकार निश्चय करे है तब यह भासै है कि परमार्थ से पर को भलो करने वालो सांचो वैद्य यह ही है। तब आप उससे अपनी हकीकत निष्कपट होय सारी कहे है। जो इस प्रकार मेरे रोग पाइये है वा मेरे में रोग की यह अवस्था बीते है, अर अब इस रोग जाने को सांचो उपाय होय सो आप कहो। तब वह वैद्य या को रोग करि दुःखित भयवान जान रोग दूर होने को सांचो यथार्थ उपाय बतावे है। पीछे यों सुनकर औषधि लेनो शुरू करे; वैद्य को अपनो रोग बतावने करि वा उपाय बतावने

करि पक्को आस्तिक्य ल्यावे है। अपना जहां तक रोग न जाय तहां तक वैद्य को सेवक अनुचर हुवो प्रवर्ते है। वैद्य के घर नाड़ी दिखावने, वा औषधि लेयवा वा दुःखी सुखी अवस्था की पूछ, वा खान पान आदिक पथ्य को विधान पूछिवा, वा उनके रोग दूर हुआ है सो अपने धन्यता वा हर्ष वा विश्राम आवने की वा उनकी सूरत देखवा इत्यादि प्रयोजन के अर्थि नित्य आया करे वा सुश्रूषा करया करे, पूजा करे अर वह औषधि बतावे सो विधि पूर्वक ले, वा पथ्यादिक की सावधानी राखे, जब याके रोग दूर होय तब यह सुख अवस्था में प्राप्त होय। सो इस प्रकार निरोग होने को मूल कारण सांचो वैद्य ठहरयो। तातैं वैद्य बिना रोग कैसे जाय अर रोग गये बिना सुखी कैसे होय। तातैं पहली अवस्था अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव त्रिदोष रहित स्वरूप को निर्णय करनो योग्य है। तहां रोग को निदान, रोग को लक्षण, चिकित्सा को पक्को ज्ञान होय अर रागद्वेष रूप मतलब जाके न होय सो परमार्थ वैद्य है। अर वैद्य के ये गुण तो नहीं पहचाने अर औषधि की जाति तथा नाड़ी देखवो ही जाने इत्यादि गुणनि के आश्रय विष की औषधि जो वह लेवेगो तो बुरो ही होयगो। जातैं जगत विषैं भी ऐसा ही कहे है—अज्ञान वैद्य यम के बराबर है। तातैं सांचा वैद्यको जितने काल सम्बन्ध न मिले तो औषधि न लेनी तो अच्छी है पर आतुर होय अप्रामाणिक वैद्य की औषधि लीयें बहुत दुःख उपजे है। सो

तुम अपने चित्त विषैं, विचार करके देखो। जिसको इलाज करावनो होय तो पहले वैद्य को ही निश्चय करे है। सो पहले तो दूसरे के कहने से वा अनुमान से स्वरूप को निश्चय करि वैद्य को आस्तिक्य ल्यावे है, पीछे उसकी कही औषधि को साधन करे है। अर आपके रोग की घटवारी होती जाय तब सुखी होय अर तब स्वानुभव जनित प्रमाण के द्वारा वैद्य को सांचोपनो भासतो जाय।

तैसे ही इस जीव के अज्ञान जनित इच्छा नामक रोग आकुलता चिन्ह लिये बन रह्यो है सो किसी समय विशेष आकुलता होय है, किसी समय कम आकुलता होय है परन्तु इच्छा नामा रोग हमेशह बन ही रह्यो है। अर जब भव्य जीवके मिथ्यात्वादिक के क्षयोपसम से भला होनहार मे काललब्धि नजदीक आवे है तब आपके किये विषय सेवन रूप उपाय तिनमे सिद्धि हुई न जान, तिन को असत्य जाने तब सत्य उपाय का निश्चय करि मेरा इच्छा नामा रोग जिस प्रकार मिटे ऐसे सत्य धर्म का साधन करना। तहां सत्य धर्मका साधन तो इच्छा रोग मेटनेका उपाय है, सो तो जो पहले आप इच्छा रोग करि सहित था, पीछे सत्यधर्मका साधन कर जिसके इच्छा का सर्वथा अभाव भया होय, तिसका बताया जान्या जाय है। जातैं *राग वा धर्म वा सांची प्रवृत्ति वा सम्यक्ज्ञान, वा वीतराग दशा-रूप निरोगता, इनका आद्योपान्त सांचा स्वरूप स्वाश्रित तिनही*

को भासे है। वेही औरों को बतलावने वाले हैं। तातैं इनको अज्ञान जनित इच्छा नामा रोग से भय उत्पन्न हुवा होय, वा साँचा रोग भास्या होय वा साँच्या ही इस रोग के मेटने वाली धर्म की बात सर्वज्ञ वीतराग भगवान की बताई आवेगी, वा जिन के इच्छा नामा रोग मिटा है तिन की मूर्ति देखने मे इस को उत्साह उत्पन्न हुआ होय सोही जीव रोगीवत भगवान रूप वैद्य का आश्रय लिया, वा याचक की तरह वा शांत रस का रसिकता से। ऐसे शांत रस की मूर्ति के दर्शन का प्रयोजन लेकर काय वचन, मन, नेत्र आदिक सर्व अंग यथावत हाव, भाव, कटाक्ष, विलास विभ्रम होय जाय है तैसे च्यारि जाति रूप अपने परिणामों को बनाय जिन मन्दिर में आवे है। तहां प्रथम तो आगे और सेवक बैठे होय तिनसों सुदेव का स्वरूप पूछि वा अनुमानादिक त निर्णय करे है अर आम्नाय के वास्ते दर्शनादि करता जाय है। अर आप सेवक बने है अर इनका उपदेश्या मार्ग जब ग्रहे है, वा इन के कहे हुव तत्वों का जब श्रद्धान करे है, जब पहले आगम श्रवण वा अनुमानादि से स्वरूप का निश्चय सांचा होय चुके है। अर इनिको सांचा स्वरूप निर्णय हुवा ही नाहीं, तथा विशेष साधने का यथार्थ ज्ञान हुवा ही नाहीं तब विना निर्णय किसका सेवक हुवा दर्शन करे है वा जाप्य करे है। अर कोई कहे हमतो सांचा देव जानि कुल के आश्रय, पंचायती के आश्रय पूजा दर्शनादि धर्म बुद्धि से करे हैं ताको कहिये है :—

वे देव तो सांचे ही हैं परन्तु तुम्हारे ज्ञान में उनका सांचा पना भास्या नाहीं। जैसे तुम पंचायती वा कुलादिक के आश्रय वा धर्म बुद्धि तें पूजादि कार्यनि विषै प्रवर्तो हो तैसे ही अन्य मतावलम्बी भी धर्म बुद्धि से वा अपनी पंचायती वा कुलादिक के आश्रय अपने देवादिक की पूजादिक करें हैं। तुम में इनमें विशेष फरक कहां रहा। तहां यह शंकाकार कहै है :— हम तो सांचा जिनदेवकी पूजादिक करें हैं, अरु अन्य मिथ्यादेवकी पूजा आदिक करें हैं। इतना तो विशेष है। ताको कहिये हैं:— जो धर्मबुद्धि तो तुम्हारे भी नाहीं अरु अन्यके भी नाहीं। जैसे दोय बालक अज्ञानी थे। उन दोनों में एक बालक के हाथ हीरा आया और दूसरे के हाथ एक बिल्लौर पत्थर आया। वे दोनों ही श्रद्धा पूर्वक उनको अपने आंचलमें बांध लिया। परन्तु दोनों ही बालकों को उनका यथार्थ मतिज्ञान नाहीं है, तिस अपेक्षा दोनों ही अज्ञानी हैं। जिसके हाथ हीरा आया सो हीरा ही है और बिल्लौर आया उसके पास बिल्लौर ही है।

बहुरि वे कहे हैं:— अन्यमत वालों के गृहीत मिथ्यात्व है अर हम सांचे देवादिक की पूजा करें हैं, अन्य देवादिक की नाहीं करें हैं। इसलिये हमारे गृहीत मिथ्यात्व तो छूट्या है इतना ही नफा हुआ। ताकों कहे हैं:—

जो तुमको गृहीत मिथ्यात्व को ही ज्ञान नाहीं कि गृहीत मिथ्यात्व किसको कहिए है। तुमतो गृहीत यह मान्या है:— जो

अन्य मिथ्या देवादिकनिकों सेवन करनो। सो यह गृहीत मिथ्यात्व को स्वरूप नाहीं भास्यो है। ताका सांचा स्वरूप कहा है सो कहिए है:—

जो देव, गुरु, शास्त्र धर्म इत्यादिकनि का बाह्य लक्षणनि के आश्रय सत्ता, स्वरूप, स्थान, फल, प्रमाण, नय इत्यादिनि का निश्चय तो नहीं होय वा लौकिकतैं बाह्य रूप जुदा न मानें, ताको बाह्यरूप भी स्वरूप न भास्या। सो अन्यको सेवे है अर कुल पक्ष के आश्रय, वा पंचायत के आश्रय वा संगति के आश्रय वा प्रभावनादि चमत्कार देखि, वा शास्त्र में वा प्रकटमें देवादिक को पूजादिक तैं भला होना कहा है तिसके आश्रय सांचे देवादिक को ही पक्षपातीपना से सेवक होय प्रवर्तें हैं तिनके भी गृहीत मिथ्यात्व ही है। सो ऐसे तो औरहू अपने देव को मानते हैं अर जिनदेव को न माने हैं। तातैं गृहीत को मेटनों तो यह है—जो अन्य देवादिक के बाह्य गुणनि को वा प्रबन्ध के आश्रय स्वरूप पहले जानि स्वरूपविपर्यय, कारण विपर्यय, भेदाभेद विपर्यय, रहित ज्ञान में निश्चय करि पीछे जिनदेवादिक को बाह्य गुणनि के आश्रय वा व्यवहार रूप निश्चय करि पीछे अपना मोटा प्रयोजन सिद्ध न होने से हेयोपादेयपनो मानि पीछे अन्य की वासना मूल से छूटे। अर जिनदेवादिक तैं ही सांची प्रीति उपज आवे है। तहाँ जो पहली अवस्था में गृहीत मिथ्यात्व के वास्ते तन धन वचन ज्ञान श्रद्धान कषाय वगैरह लगाता

था, सो व्यवहारकर जिनदेवादिकको सेवक होयकर प्रवर्ततो, अब ये दूषण रहित हर्ष पूर्वक विनय रूप होय, पच्चीस सम्यक्त्व के जे मल तिनको विचार कर न लगावता तन धन वचन ज्ञान श्रद्धान कषाय वगैरह उसमें लगावे को सद्भाव रूप ही प्रवर्ते है, और के न प्रवर्ते है, अभाव साधे अर मिथ्या सद्भाव को स्थान न दे है वा सममर्थन न करे है, वा सहकारी कारण न बने है।

तहां देवके कथनमें तो देवसम्बन्धी मिथ्यासद्भाव न करे है तहां अन्य देव जिनदेव तिनमें समतारूप प्रवर्त्ति न राखे है वा जिनदेवको स्वरूप वा बाह्य रूप अन्यथा न कहे है वा न सुने है, वा वीतराग देव की प्रतिमा को रूप सरागरूप न करे है, अविनयादि रूप प्रवृति न करे है, अर वह रूप न बनावे है, वा लौकिक में अतिशय रूप अन्यथा न कहे है, अविनय स्वयं होवे सो प्रबन्ध न करे है, वा सांचे देवादिक की प्रतिमा जी को अविनयादिक हो तो होय तहां तें बच्या रहे है। ऐसे ही शास्त्रादिक को जानना। ऐसे अन्य देवादिकतें सम्बन्ध छोड़नों ही गृहीत मिथ्यात्व को छूटनो है।

सांचा देवादिक तें सांची प्रवृत्ति—व्यवहार रूप विषय कषायादि को आश्रय रहित किये गृहीत मिथ्यात्व छूटगो। तातैं तुम अन्य देवादिकतैं तो सम्बन्ध बिना परीक्षा किये ही छोड़ो. परन्तु सांचे देवादिक विषै तो जैसे आगे औरनितैं सांची लागथी तैसी प्रीति न भई, सो तुम अपने परिणामनि विषैं विचार कर देखो जातैं अंतरंग प्रीति को कार्य बाह्य दरस्या बिना रहै

नाही । तातैं गृहस्थी है ता यह सुगम मार्गरूप भला का बात है । जो वर्तमान क्षेत्र काल में सर्व ही अपने २ देवादिक से प्रवृत्ति करे हैं सो ही तुम भी धन, कुटुम्बादि को पोषण, भोग, रोगादिक वा विवाहादिक कार्यनि विषै तो जैसे प्रवर्तो हो तैसे पद योग्य नानापने लिये उसही रूप प्रवर्तो । जितने तुम्हारे विशेष धर्म वासना न बढ़े तितने इन के बट (हिस्सा) को धनादिक तो इन के अर्थि लगाया करो । अर आगे तुम पहली अवस्था में गृहीत मिथ्यात्व के लिये जो करते थे, वा वर्तमान में दूसरे तुम्हारे बराबरी के गृहस्थ अन्य देवादिक के अर्थि जो करे हैं. सो तो माया, मिथ्यात्व, निदान रहित साँचा देवादिक के लिये तुम इन योग्य होय सो करोगे तबही गृहीतमिथ्यात्व छूटेगा । याके बट (हिस्सा को तो तन मन धन वचन ज्ञान श्रद्धान कषाय क्षेत्र कालादिक यहां लगावोगे, तब बाह्य जैनी बनोगे । अर तुम बाह्य रूप सांचा आस्तिक्य ल्यावो नाहीं वा ज्ञान करो नाहीं वा क्रिया सुधारो नाहीं, धन लगावो नाहीं, हुल्लास पूर्वक कार्य करो नाहीं. आलस्य आदिक कम छोड़ो नाहीं. कोरी बातनि तैं पाँच आलसी अज्ञानी भाइनि का सम्बन्ध कायलकरि जैनी बने है तो बनो, फल तो शास्त्र मर्यादा रूप प्रवर्ते साँचा लगेगा, अर यह अवसर जाता रहेगा तब तुम ही फिर पश्चाताप करोगे अर कहोगे कि:—आगे मिथ्यात्व कार्यनि में हर्ष पूर्वक तन धन खरचे थे । अर अब तुम सांचा जैन मत का सेवक बनो, सो उस जाति कार्य-

तन धनादिक न लगाया जाय तो इस मत में आयेसे तुम्हारी शक्ति घट गई वा कपट करि लौकिक दिखावने सेवक हुआ हो वा इन को बड़ो फलो तुम को भास्यो नाहीं है, वा तुम को इन में कुछ भी फल की प्राप्ति होगी भासी नाहीं, वा तुम्हारे वास्तविक रहस्य ही उपज्यो नाहीं. जो तुम स्वयमेव उत्साह रूप होय कार्यनि विषै सुखरूप यथा योग्य न प्रवर्त्तो हो. वा पंचायती वा वक्ता का कहने करि वा प्रबन्ध बंधावा के आश्रय निराश हुओ प्रवर्त्तो हो, वा तुमको यह कार्य फीको भास्यो लागे है। सो कारण कहा है ? जो तुम कहोगे कि रुचि उपजे ही नाहीं, शक्ति उमगकरि चलावने को उद्यम होयही नाहीं हम कहा करें ? सो यह तो यह जान पड़ी जो तुम्हारा होनहार ही चोखा (अच्छा) नाहीं है। जैसे रोगी को औषधि वा आहार न रुचे तब जानिये कि मरण नजदीक आया है। अर जो तुम्हारे अंतरंग में वासना न उपजी है, अर बड़ा कहावने के अर्थि वा दस आदमियों में सम्बन्ध राखने के वासते अयथायथा कपट करि प्रवर्तो हो, तो लौकिक अज्ञानी जीव तो तुम्हें भला कह देसी परन्तु जिनके तुम सेवक बनो हो सो वे तो केवली भगवान हैं उनसे तो कपट छिप्यो रहेगो नाहीं वा कर्म परिणामों के अनुसार बंधे बिना रहते नाहीं, अर तुम्हारे बुरा को करने वालो कर्म ही है तातैं तुम्हारे इस प्रकार प्रवर्तवामें नफो कहां भयो ? अर जो तुम इनतैं विनयादि रूप, वात्सल्य रूप वा रसस्वरूप न प्रवर्तो हो,

तो तुमको इनको बड़ोपनो वा स्वामीपनो भास्यो ही नाहीं। सो तुमरे अज्ञान आया; तो बिना जाने सेवक क्या बने। अर जो तुम कहोगे कि हम जाने हैं तो इनिके वास्ते मिथ्यात्वकी सी प्रवृत्ति ऊंचो कार्यनिकी उमंग रूप तो न भई। जैसे कुलटा स्त्री पर पुरुष को अपना भर्तार जानि तिस रूप कार्य करती थी, अच्छा भोजन खिलाती थी। कोई भाग्योदयसे अपने पतिका लाभ भया। अर पहले पर पुरुष के निमित्त अपना स्वरूप वा आछो कार्य बनावती थी अर अब भर्तार के सम्बन्ध में रस वा आछो कार्य बनते हुये हुवे भी न करे है। तब वाको बड़ी खोटी कुलटा ही कहिये। तैसे ही तुम पहले मिथ्यात्व अवस्था में अन्य देवादिक के वास्ते रस रूप अच्छे २ उमंगि कार्य करते थे, अर अब बहुत ही बड़ा भाग्यसे तुमको अपनो सच्चो स्वामी जिनदेवकी प्राप्ति हुई, अर तुम जान लिया वा मुखसे भी कह चुके। अर तुमरे वनिता भी जैसा अन्य देवके सम्बन्ध से रस वा उमंगि रूप चाकरी, वा धन का खर्चना, वा पूजादिक करना वा यात्रा आदिक जाना वा भयवान होना वा नीचा बैठनादिक कार्य होते थे अर साँचे देवादिक के सम्बन्ध में वह रस न आवे, वह उमंग वा वैसे कार्य न होय तब जानिये है तुम्हारे कुलटा स्त्रीवत गृहीत मिथ्यात्व बडो है। जातैं यह बड़ो भारी गजब है जो निज स्वामी के सम्बन्ध में हर्ष रूप कार्य नहीं होय। सो तुम स्वयं विचार करि देखो। हमको जोरावरी से तुम्हारे दूषण लगावनों नाहीं है। अर जो तुम्हारे

ऐसे ही प्रवृत्ति वो प्रकृति बनि रही है तो दोष तुम्हारे घर अवश्य होगा। जारै पर पुरुष बांच (अपेक्षा) निज भर्तार से अधिक रस स्वरूप कार्य होने पर ही शीलवानपनो रहै सो तैसे ही तुम्हारे कुदेवादिकको सम्बन्ध में सांचो रस रूप बढ़तो कार्य हुवे ही धर्मात्मापनो आवेगा।

अर तुम कहोगे कि—हमको विशेष फल तो कछु भास्यो नाहीं। भावार्थ— जो अन्य देवादिकतैं मेरे कहा फल हुवो है सो कहो— तैं सेवन करे बताये सो तो इनितैं होय तो बताय द्यो वा वा युक्ति करि भी बताय द्यो। आर्तध्यान सिवाय इनसे सांचे देवादिक तैं जो फल होय है तिसका वर्णन फल निश्चय प्रकरण में लिखेंगे।

जो धन का आगमन, वा शरीर का निरोगपना पुत्रादिक का लाभ या इष्ट सामग्री की प्राप्ति, वा पुत्र स्त्री आदिक की जीवन वांछा, वा सुन्दर स्त्री का सम्बन्ध मिलनो, विवाहादि कार्य में विघ्न का नहीं होना इत्यादि बातों के वास्ते तू अन्य देवादिक को पूजे है वा विनयादि करे है—सो हम पूछे हैं—जो अन्य देवादिकतैं इनि इष्ट बातनि को अवश्य होनो स्वाश्रित या पराश्रित कैसे निश्चय किया है, जिससे तुम्हारे प्रबल आस्तिक्य आशा है सो बतावो। प्रत्यक्ष से वा अनुमान से वा देश परदेश अनि की वातों से निश्चय करि आया है सो हमको भी निश्चय कराय द्यो। सो प्रत्यक्ष में तो निज ने अनि करि यह दिखावो

जो अन्य देव के पूजने से इष्ट की प्राप्ति मेंर वा औरों के अवश्य हुई है, अर जिन देव के पूजने वालों के अनियामक है। बहुरि अनुमान में पक्को ऐसो साधन बतावो जिससे यह भासि जाय— जो अन्य को पूजने वालों के इष्ट की प्राप्ति होय ही होय अर तिन देव के पूजने तैं होय भी अर नहीं भी होय। अर कानों से यह बात मुख्य सुनने में आई होय कि जो देश परदेशमें अन्य देवादिक के पूजने वाले के तो इष्ट की प्राप्ति हुई ही है अर जिनदेव के पूजने वाले के भई भी है अर नहीं भी भई है। सो ऐसो प्रबन्ध निरापेक्ष होय है विचार किये तो भासेगो नाहीं। तातैं जीवन मरण, सुख दुःख, आपत्ति संपत्ति, रोग निरोगिता, लाभ अलाभ, इत्यादि तो जैनी वा अन्य मती सबके अपने अपने पूर्वोपार्जित कर्मोदय के आश्रित सामान्य विशेष रूप से होय है।

जैसे शीतला पूजने वाला तो अपने पुत्र के जीवनके वास्ते ही पूजे है अर पूजते हुये भी मरते हुये प्रत्यक्ष देखिये ही है। अर अनुमान तैं भी यह भासे नाहीं जो शीतला पूजने वाले के पुत्र जीवेगा ही। अर देश परदेश में सुनवा में भी नाहीं आई जो सर्व ही पूजने वालों के पुत्र जीया ही है। इस प्रकार सब बातें जान लेना। जगत में भी ऐसे ही कहैं हैं।

जब शीलता के पूजते २ पुत्र मरि जाय तब कहे कि— प्राणी की आयुस्थिति होय सो ही भुगते है, एक पल भी अगाड़ी पिछाड़ी होय नाहीं सके है, शीतला कहा करे, यह भी पूजादिक

का व्यवहार बनाय दिया है। सो इस में तो जगत को कहने को भी जीवन मरण सुख दुःख लाभ अलाभ आदिक को मूल में तो कर्म का आयु वासाता असाता वा अन्तरायादिक को ही सन्मुख पनों वा प्रतिकूलपनों ही प्रबल कारण ह्वै रह्योहै। तातैं सत्यार्थ दृष्टि करि निर्णय किये सर्व संकल्प छोड़ि अपने देव विषै ही आस्तिक्य बुद्धि ल्यावनी योग्य है।

कार्य तो कर्म के उदय के आश्रित जो होनो है सो ही होयगो--ऐसा निश्चय राखना योग्य है, धर्म छोड़े इष्ट की प्राप्ति होनो संभवे नाहीं। और मत वाले भी ऐसे ही कहे हैं:—

अपने अपने इष्ट को, नमन करे सब कोय।
इष्ट विहूंना परशराम, नमें सो मूरख होय॥

बहुरि वह कहे हैं:—जो सांचा मन से पूजे है तिन के तो इष्ट की प्राप्ति होय ही है। ताको उत्तर:—

जो जहां कर्म को उदय करि इष्ट की प्राप्ति होय है, तबतो तू इनि को (कुदेवादिक को) कियो बतावे है। अर इष्ट की प्राप्ति न होय वा अनिष्ट की प्राप्ति होय, तब तू कहे सांचे मन में सेवा न करी। तो इनि का किया ही होय है:—ऐसा निश्चय आवे सो उपाय बता। अर तू कहेगा:—जिन देव के पुजने वाले के भी तो यह नियम दीखे नाहीं। तो तुम्हारा कहना सत्य; परन्तु तुम तो अपने देवको कर्ता कहते हो सो हम कहें तो दूषण आवे

सो हम कर्त्ता तो कहते नाहीं हैं। जो यह जीव तप त्यागादिक करि वा विषय कषाय व्यसनादिक करि शुभ अशुभ कर्म को बान्धे है तिस के उदय से स्वयमेव इस जीव के बाह्य निमित्तादिक को सहकारीपनों होय तब इष्ट अनिष्ट को सम्बन्ध बने है। तहाँ यह कहे है:—तुम जो भला बुरा को होनों अपने परिणामों तैं मान्या तब तुम देवादिक को पूजन किस वास्ते करो हो ताको उत्तरः—

हमारे तो यह आम्नाय है जो अपनो श्रद्धान ज्ञान त्याग तपादिरूप कल्याण मार्ग को ग्रहण करे है। अर जो इनि के पूजनादिक तैं ही लौकिक इष्ट की प्राप्ति, अनिष्ट की अप्राप्ति मानि पूजे हैं तिन के तो मुख्यपने पाप बन्ध ही होय है क्यों कि उस को देव तो प्यारा लगा नाहीं अपना प्रयोजन ही प्यारा है। जब अपना प्रयोजन सध जायगा तब देव का सेवन छोड़ देवेगा वा अन्यथा वचन निकालने लगेगा। तब याके देव विषै आस्तिक्य वा राग कहां रह्या। अर पूर्वकर्म ताका अच्छा बुरा उदय आवनेका प्रमाण नाहीं। तातैं इनि प्रयोजन के अर्थि जिन देव को सेवक होनो कह्यो है नाहीं, हमारे तो जिनदेव सांचो संसार मोक्ष मार्ग को निषेध विधि वा स्वरूप सत्य दरसायो है। तिन को भव्य जीव जानि अपनो कल्याण करे है वा सुख रूप जो शांति रस ताको अवलंबन भावे है। ऐसी प्रयोजन सिद्धि होती जानि सेवक होनों कह्यो है। तातैं यह दोय प्रयोजन इनि से ही सिद्ध होय है।

बहुरि कोई कहे कि:—स्तोत्रादि विषै वा पुराणनि में ऐसा भी तो कहा है जो इनिके पूजनादिक तैं रोग दूर हो जाय है वा ऋद्धि आदि आवे है वा विघ्न दूर होय है। ताको उत्तर—

तुम को नय विवक्षा का ज्ञान नाहीं है। इसी से स्तोत्रादि में व्यवहार नय करि इनि तैं रोगादि दूर होना इत्यादि कहा है। जातैं भले कार्य होय हैं सो शुभ कार्य का उदय से होय है। ये बातें शास्त्र में वा जगत में वा विचार किए अपने चित्त विषैं प्रकट आवे है। अर शुभ कर्म को उदय तब होय जब पहले शुभ को बंध भयो होय, अर शुभ कर्म का बंध तब होय जब श्रद्धान ज्ञान आचरण त्याग तप पूजादि शुभ कर्म कार्यनि रूप प्रवर्तें है। अर शुभ कार्यनि में प्रवृत्ति तब होय है जब शुभ कार्यनि को स्वरूप दर्शाया जाय है। सो सच्चा स्वरूप वा मार्ग, पूर्वापर विरोध रहित दर्शाने वाले सर्वज्ञ वीतराग जिन देव ही है। तातैं सर्व लौकिक इष्ट कार्य भी व्यवहार नय करि स्तोत्रादिक में इनि के किये कहे हैं। जातैं इन्हों ने जब सत्य मार्ग बताया तब यह जीव शुभ मार्ग रूप प्रवर्त्यो अर जब शुभ मार्ग रूप प्रवर्त्यो तब नवीन शुभ कर्म को बन्ध हुओ, अर जब शुभ कर्म को बन्ध हुओ तब शुभ को उदय आयो, अर जब शुभ कर्मनि को उदय आवे है तब आप ही रोगादिक दूर हो जाय हैं अर इष्ट सामग्री की प्राप्ति हो जाय है। सो ऐसे व्यवहार करि जिन देव को इष्ट का कर्त्ता

और अनिष्ट का हर्त्ता कह्या है। जैसे वैद्य है वह तो औषधादि का बतावने वाला है औषधादिक का सेवन जब रोगी करे है तब रोगादिक दूर होय है, पुष्टता प्राप्त होय है। परन्तु उपकार स्मरण के अर्थि व्यवहार रूप ऐसा कहिये है—जो वैद्य हमको जीवन दान दिया, वा रोग की निवृत्ति करी। तैसे ही मार्ग का स्वरूप दर्शाने रूप उपकार स्मरण के वास्ते स्तोत्रादिकों में यह बात कही है।

अर जो इस नय विवक्षा को तो नाहीं समझे है अर इनि को ही कर्ता मानि आपतो कल्याण को मार्ग नाहीं ग्रहण करे है अर इनिही से सिद्धि होनी मानि निश्चिन्त रहे है ते तो अज्ञानी भी है अर पापी भी है। अर जो इनिको कर्ताहर्ता माने है अर आप भी शक्ति मुताबिक शुभ कार्यनि में प्रवर्ते है ते तो अज्ञानी शुभोपयोगी है। बहुरि जो इनिको सत्य स्वरूप वा सत्यमार्ग दर्शाने वाले जाने हैं अर अपना भला बुरा अपने परिणामों से माने है अर उस रूप प्रवर्तें हैं अर अशुभ कार्यों को छोड़े हैं ते सांचे जिनदेव के सेवक हैं। तहां जिनदेवको सेवक होनो वा जिन देवको उपदेश्यो मार्ग रूप प्रवर्तनो होय, तिनको सबसे प्रथम जिन देवको साँचो स्वरूप अपने ज्ञान में ठीक करि श्रद्धान करनो, सो देवको त्रिदोष रहित मूल लक्षण निर्दोष गुण है। जातैं निर्दोष देव ऐसो वचन है। तहां देव नाम पूज्य वा सराहने योग्य है। सो यहां देवको निश्चय करनो है, सो देव जीव है। सो जीवमें

संभवे ऐसे दोष सर्व प्रकार जिनके दूर भये ते ही जीव पूज्य वा श्लाघ्य हैं, तिनही के देव संज्ञा है। तहां लौकिक में हीरा स्वर्ण आदिक में दोष हैं तिनतैं तिनकी कीमत घटि जाय है। तैसे ही जीव को नीचा दिखाने वाले वा निन्दा करावने वाले दोष अज्ञान रागादिक हैं इनि ही से जीवकी हीनता होय है।

जाते बढ़िया कपड़ा पहरया होय वा अच्छी सूरत होय, बड़ा कुलका होय, आभूषणादि पहरे होय अर ज्ञान थोड़ा होय वा विपर्यय होय वा क्रोध, मान, माया लोभादि कषाय संयुक्त होय तो जगत वाकी निन्दा ही करे। ऐसे जिनके ज्ञान थोड़ा होय अर कषाय बहुत होय तिनकी निन्दा ही करे है। तातैं विचार किये निन्दा करावने वाले दोष अज्ञान रागादिक ही हैं और गुण सांची वीतरागता ही है। जातैं पुण्यवान गृहस्थ भी त्यागी तपस्वी की पूजा करे हैं। तातैं यह जानिए है कि सर्व लौकिक इष्ट वस्तुनिसे त्याग वैराग्य श्रेष्ठ है। तहां जिनके सम्पूर्ण सत्यज्ञान विरागता भई है ते तो सर्वोत्कृष्ट पूजने योग्य हैं अर इनि ही को परम गुरु कहिये है। अर जिनके ज्ञान पूर्ण न हुआ है अर वीतरागता पूर्ण न भई है ते भी एक देश पूज्य हैं, ऐसा जानना। यहाँ कोई प्रश्न करे— "जो तुम्हारे देव के ही ज्ञान की पूर्णता भई और देवनि के न भई यह कैसे जानवे में आवे सो कहो।" उत्तर— जो हम निरपेक्ष होय कहे हैं जो जिसके वचन का, वा मत का प्रत्यक्ष किये वा अनुमान किये, आगम की वा न्यायरूप लौकिक

स्ववचन की बाधा न लागे सो ही सर्वज्ञ वीतराग है। जातैं इनिको सर्वज्ञ वीतरागपनां प्रत्यक्ष तो भासै नाहीं, प्रत्यक्ष तो केवली ही के भासै है. अर आगम में लिखा हुआ ही मान लीजिए तो इसके ज्ञान में तो वह विषय नहीं आया, अन्य के वचन से मानी। तहां याके वस्तु को यथार्थ ज्ञान तो न भयो, वचन श्रवण भयो। ऐसे अज्ञान प्रधानों को अष्टसहस्री आदि ग्रन्थों में अज्ञानी कह्या है।

तातैं प्रयोजन भूत जो बातें आगम में कही हैं तिनको प्रत्यक्ष अनुमानादिक तैं अपने ज्ञान में निश्चय करि आगम पर प्रतीति लानी योग्य है। सो इनि प्रश्नोत्तरोंका विशेष व्याख्यान प्रमाण निश्चय के कथन में लिखंगे। यहां अनुमान के द्वारे अर्हन्त के स्वरूप का निर्णय होयगा।

अनुमान तब होय जब साध्य साधन की व्याप्ति रूप सत्य तर्क पहले होय। सो यहां असिद्ध, विरुद्ध, अनेकान्तिक, अकिंचित्कर इनि चारि दूषण रहित अन्यथानुपपत्ति रूप साधन को प्रथम ही निर्णय करना। तहाँ जो अर्हन्त देव को पूजो हो, प्रति दिन दर्शन करो हो सो कुल बुद्धि ही करि करो हो वा लौकिक पद्धति करि करो हो। वा उनकी प्रतिमा विराजे है तिनकी आकृति वा छोटा बड़ा आकार वा वर्ण भेद इनही पर तुम्हारी दृष्टि है कि कुछ मूल अर्हन्त को भी स्वरूप भास्यो है? तहां वे कहे हैं कुल पद्धति में भी इनहीको नाम कहावे है वा शास्त्र

में भी सुन्यो है—अठारह दोष रहित हैं, छियालीस गुणों सहित विराजमान हैं, ध्यान मुद्रा के धारक हैं, अनन्त चतुष्टय सहित हैं, समवशरणादि लक्ष्मी विभूषित हैं, स्वर्ग मोक्ष के दाता हैं, दुःख विघ्नादिक के हर्ता हैं। इत्यादि गुण शास्त्रनि से सुने हैं वा स्तोत्रादि पाठों में पढ़े हैं तिनमें भी वही वार्ता कही है। तातैं हम पूजे हैं दर्शन करे हैं। ताको कहिए—

जो तुम यह बातें कहीं सो तो सब सत्य हैं, परन्तु तुम्हारे तो इन बातों का युक्ति पूर्वक ज्ञान, वा आस्तिक्य वा रस रूप सेवकपनो भयो भासै नाहीं है जातैं तुम हो कुल पद्धति में इनही के कहावो हो; सो सत्य, तुम जैनी कहावो हो सो इसको तो यही अर्थ है, जो जाके जिनदेव ही को सेवकपनो होय सो जैनी। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति के ही नाम दुःख सुखादि सर्व अवस्था में कहावे, वा पुत्र है सो जिस जाति को पिता है सो सुख दुःखादि सर्व अवस्था में उसही जाति का कहावे है सो तुम्हारे तो जिनदेव ही हमारे स्वामी हैं ऐसो याको आस्तिक्य भी साँचो भासता नाहीं जातैं सर्व मतवाले अपने २ इष्ट देव के सेवक हुवे प्रवर्तैं हैं तुम्हारे तो यह भी नाहीं, सो तुम शीतल दृष्टि करि विचार देखो। बहुरि शास्त्रनि में सुन्यो है सो हम पूछे हैं कि शास्त्र में तो लिख्या ही हैं परन्तु तुमको कहा भास्यो अठारह दोष रहित है? कोई तर्क करे श्वेताम्बरादिक तो युक्तिपूर्वक उत्तर देने को समर्थ हैं। वा दोष के रहित है तो तिन के फूलमाला

पहिराना, वा शरद पूर्णिमा का उत्सव करना इत्यादि दोष के कार्यों को बनावो हो वा इनि अठारह दोषों में कितने दोष पुद्गलाश्रित हैं कितने दोष जीवाश्रित हैं वा कितने दोष जीव पुद्गल आश्रित हैं यह तो निश्चय किया होता। वा अठारह दोष रहितपना हुवे ही देवपनो आवे है यह निश्चय किया होता वा इनि के अठारह दोष कैसे गये हैं यह युक्ति पूर्वक निश्चय कियो होतो अर पीछे दोष सहित को देवपनो नहीं मानने इन्हीं को मानते तब "अठारह दोष रहित अर्हन्त हैं" ऐसे वाक्य काढ़ना तुम्हारा साँचा होय।

बहुरि तुम कही जो छियालीस गुण विराजमान हैं सो यह सब अर्हन्तों में हैं ही नाहीं। तुम कुछ निर्णय भी करयो है कि ऐसे ही कहे जावो हो। तहां छियालीस गुण तो यहां हैं:— जन्म के अतिशय १०, केवल ज्ञान के अतिशय १०, देव कृत अतिशय १४, प्रातिहार्य ८, अनन्त चतुष्टय ४,। सो अर्हन्त देव तो सात प्रकार के हैं:—

पंच कल्याण युक्त तीर्थंकर १, तीन कल्याण संयुक्त तीर्थंकर २, दो कल्याण संयुक्त तीर्थंकर ३, सातिशय केवली ४, सामान्यकेवली ५, उपसर्ग केवली ६, अन्तकृत केवली ७

तहां इनि सर्व ही विषै छियालीस गुण कैसे संभवे। ये तो केवल एक पंच कल्याण संयुक्त तीर्थंकर हैं तिन विषै ही सर्व पाइये हैं। जातैं इनि सात प्रकारके अर्हन्तोंका स्वरूप तो यहहै:—

जो पूर्व भव में तीर्थंकर प्रकृति बांधि तीर्थंकर होय हैं उन के तो नियमसे गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण ये पांचों ही कल्याण होय हैं तिन के तो छियालीस गुण होना संभवे है।

और जो इस मनुष्य पर्याय का ही भवमें गृहस्थ अवस्था में ही तीर्थंकर प्रकृति को बांधे हैं तिनके तप, ज्ञान, निर्वाण, तीन कल्याण ही होय हैं तिनके जन्म कल्याण के दश अतिशय नहीं होय हैं केवल छत्तीस ही गुण पाइये है।

३- जो इस मनुष्य पर्याय में ही मुनि दीक्षाके बाद तीर्थंकर प्रकृति बांधे हैं तिनके दो ही ज्ञान और निर्वाण कल्याण होय हैं तिनके भी जन्मके दश अतिशय बिना छत्तीस गुण पाइये हैं।

४- जिनके तीर्थंकर प्रकृति का उदय नाहीं होय, गंध कुटी आदि संयुक्त होय ते सातिशय केवली कहिये हैं।

५- जिनके केवल ज्ञान तो उत्पन्न हुआ होय अर गंध कुटी आदि नाहीं होय ते सामान्य केवली कहिये हैं।

६- जो केवल ज्ञान उपजते ही लघु अन्तर्मुहूर्त में निर्वाण प्राप्त करलें तिनको अन्तकृत्केवली कहिए है।

७- बहुरि जिनके उपसर्ग अवस्था में केवल ज्ञान हुआ होय सो उपसर्ग केवली कहिए हैं।

सो अतिशय केवली के जन्मके अतिशय तो नहीं होय हैं। अष्ट प्रातिहार्य, चौदह देवकृत अतिशय, केवल ज्ञानके दश अति-

शय चारि अनन्त चतुष्टय पाइये हैं और सामान्य केवली के वा उपसर्ग केवली के वा अन्तकृत केवली के भी जन्मादिक का अतिशय संभवे नाहीं। तातैं बिना निर्णय करयाँ ही छियालीस गुण संयुक्त अर्हन्त देव हैं—इस प्रकार कहना संभवे नाहीं। जातैं छियालीस गुण तो पंच कल्याण संयुक्त तीर्थंकर होंय तिनके ही पाइये हैं। बहुरि ध्यान मुद्रा देखि पूजो हो तो याकां इतनी बात और जाननी चाहिये कि ध्यानमुद्रा ऐसी पूज्य क्यों है ? वा ध्यान मुद्रा ऐसी ही है वा ऐसी ध्यानमुद्रा ही शुद्ध वा शुभ चितवनको आधार है या ऐसी सांची ध्यान मुद्रा इन्हीं के संभवे है औरां के नाहीं संभवे है। ऐसी ध्यानमुद्रा को हम क्यों पूजे हैं सो प्रयोजन विचारना चाहिये।

ऐसे युक्ति पूर्वक निश्चय करि पूजे हैं वा दर्शन करे हैं तिन ही के सांचे प्रयोजन की सिद्धि होय है। बहुरि तुम कही—अनन्त चतुष्टय विराजमान हैं तातै पूजे हैं, दर्शन करे हैं ताको कहिए है—जो यह सत्य है। वे तो अनन्त चतुष्टय सहित विराजमान हैं ही वा शास्त्रों में लिखा ही है परन्तु तुमको तो अपने ज्ञान में निर्णय करना था। अनन्त चतुष्टय का स्वरूप क्या है और उनसे पूज्यपना कैसे आवे है अर ये इन्हीं विषै कैसे पाइये हैं वा अनन्त चतुष्टय सहित को हम क्यों पूजे हैं ऐसा भी कभी तुम निश्चय किया है कि लौकिक पद्धति ही से ये वचन कह करि पूजो हो।

सो तुम अच्छी तरह विचार करि देखो कि इनका तुम्हारे कुछ ज्ञान भया भी है कि नाहीं।

अर तुम कही समवशरणादि लक्ष्मी संयुक्त है सो प्रथम तो समवशरणादि लक्ष्मी इनके भई है या नहीं ऐसा प्रमाण चाहिये। अर समवशरण में क्या रचना है सो विशेष जानना चाहिये वा वह रचना वीतरागदेव के निकट इन्द्र क्यों बनाई वा इस रचना से संसार कैसे पोष्या जाय अर समवशरण लक्ष्मी तैं इनि के पूज्यपना कैसे आया वा समवशरणादि लक्ष्मी संयुक्त जानि हम क्यों पूजे हैं ऐसा निश्चय करि पूजना योग्य है। वा स्वर्ग मोक्ष का दाता जानि पूजादिक करो हो सो ये स्वर्ग मोक्ष का दाता कैसे हैं। जो जैसे दातार किसी को वस्तु देता है वा जैसे किसी को धनादिक पैदा करने की सलाह देता है अर वह उस कार्य रूप प्रवर्तै तब तो ताके धनादिक की प्राप्ति होय तब वह उस का उपकार मान कर कहे जो यह धन आप ही दिया है।

बहुरि एक तरह यह है कि—यह जीव तो अयथा कार्यरूप चाहे जैसे मिथ्यात्व अभक्ष्य अन्यायादि कार्यनि विषै प्रवर्तै और इनि के मंदिरादिक आवे और झूठा पूजा जोग्य नमस्कारादि लौकिक पद्धति रूप कार्य करै है ताकों ही स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति कर देवे है।

बहुरि एक विवक्षा यह है—जो जीव तो अज्ञानी है और इनि के वचनों कर स्वर्ग मोक्ष का मार्ग प्रकट हुआ, ताको जानि

भव्य जीव उस मार्ग को ग्रहण करें। तब उनके स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति भई। तातैं इनि को मोक्ष मार्ग दिखाने का उपकारी जानि इन को स्वर्ग मोक्ष का दाता कहिये है।

तहां तुम नय विवक्षा न समझि इनको मार्गोपदेशक जानि पीछे "उनका कहया सांचा जो मोक्षमार्ग ताको ग्रहण करसी ताके स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति होसी" ऐसा जानि उपदेशक का उपकार स्मरण करि स्वर्ग मोक्ष का दाता कहो सो तुम्हारा कहना सांचा ही है।

अर इन्हीं को स्वर्ग मोक्ष का दाता जानि आप निश्चिन्त हुआ स्वच्छन्द होय प्रवर्त्तै है ताको विनयदृष्टि गोमट्टसार जी में कह्या है।

बहुरि तुम कहो हो—हम तो भगवान को सुख स्वरूप निर्णय कियो है। सो तुम तो सुख को स्वरूप, भोग सामग्री को मिलवो, वा निरोगता वा धनादिक की प्राप्ति को मानो हो। सो यह सुख तो भोजनादि वा स्त्री आदिक वा अन्यकुदेवादिक वा राजादिक वा औषधि आदिकनि हीतैं होय जाय है। सो विचार किये आकुलता न मिटने से दुःख ही है। अर जो सम्यक ज्ञान पूर्वक निराकुलता रूप सुख इनमें होय है सो तुमको प्रतिभासित नहीं हुआ है वा तुम्हारे उसकी चाह नहीं है।

तुम इस देव के पास कैसा सुख चाहो हो जिसको कर्ता मानि पूजो हो। जिसको तुम सुख मानो हो सो लौकिक सुख

तो इनि के दर्शन करने से, सेवक होने से, वा वचनों के सुनने से थोड़ा बहुत तो अवश्य छूटैहीगा। तातै तुमको सुख का वा जिस सुख के ये दाता हैं उनका निर्णय करि पूजना योग्य है।

जहां इनिके कहे हुए मार्ग को पूर्ण प्रकार ग्रहण करते हैं वे तो साक्षात मोक्ष को पाते हैं और जो एक देश सच्चे मार्ग को ग्रहण करते हैं ते पुण्य बन्ध के होने से पुण्योदय से स्वर्ग को पाते हैं।

ऐसे जिनदेव निश्रेयस वा अभ्युदय रूप सुख को देने वाले हैं। बहुरि तुम दुःख का हर्ता वा विघ्न का नाशक जानि जिनदेवको पूजो हो सो तुम दुःख वा विघ्नका स्वरूप क्या मानते हो सो बताओ? जो तुम अनिष्ट सामग्री को दुःख का कारण मान्या है तो तुम यह नियम बताओ जो यह सामग्री सुख का कारण है, यह सामग्री दुःख का कारण है। तो हम सामग्री के ही अधीन सुख दुःख मानें सो तो विचार किये नियम सर्वथा भासेगा नाहीं।

जो सामग्री काहू कालमें, किसी जीवके किसी क्षेत्रमें, कोई अवस्थामें इष्ट लगती है, वही सामग्री अन्य कालादिक में अनिष्ट लगती हुई देखी जाती है। इसलिये वाह्य सामग्री के आधीन सुख दुःख मानना भ्रम है। जैसे पुण्यवानको अनेक इष्ट सामग्री मिले है और मूल दुःख न टले है, जातैं उस सामग्री के मिलने पर दुःख दूर होगया होय तो दूसरी सामग्री काहेको अंगीकार करे।

तातैं तुम दुःखका स्वरूप असत्य मान रक्खा है। सत्यस्वरूप यह है:—

अज्ञानसे उत्पन्न होने वाली इच्छा ही निश्चयसे दुःख है। सो तुमको दिखावे हैं—यह संसारी जीव अनादि से अष्ट कर्मका उदय करि उपजी जो अवस्था तिस रूप परिणमै हैं तहां भिन्न पर द्रव्य वा संभोग रूप परद्रव्य, वा विभाव परिणाम वा ज्ञेय श्रुत का ज्ञान के षड् रूप भाव पर्याय के धर्म, तिनमों अहंकार ममकार रूप कल्पना करि, अर परद्रव्यों को मिथ्या इष्ट अनिष्ट कल्पि मोह, राग, द्वेष के वशीभूत होय कोई परद्रव्य को आप रूप मान लेता है। जिसको इष्टरूप मान लेता है उसको ग्रहण करना चाहता है। और जिसको पररूप अनिष्ट मान लेता है, उसको दूर करना चाहता है। इस प्रकार इस जीवके अनादिकाल से एक इच्छा रूप रोग अंतरंग में शक्तिरूप उत्पन्न हुआ है उसके चार भेद हैं:—

मोह इच्छा, कषाय इच्छा, भोग इच्छा, रोगाभाव इच्छा—तहां इन चारों में से प्रवृत्ति एक कालमें एक ही की होती है। किसी समय किसी इच्छा की और किसी समय किसी इच्छाकी होती रहती है।

तहां मूल तो मिथ्यात्वरूप मोह भाव एक सांचे जैनी बिना सर्व संसारी जीवों के पाइये हैं। प्रवृत्ति रूप चार प्रकार की इच्छा का कार्य ऐसे होता है—

तहां मोह इच्छा का कार्य इस प्रकार है— आपतो कर्म जनित पर्याय रूप बन्यो रहे, उसी विषै अहंकार लाता रहे—जो मैं मनुष्य हूं, तिर्यञ्च हूँ, इस प्रकार जैसी जैसी पर्याय होय तिस तिस रूप ही आप हुओ प्रवृते है और जिस पर्यायमें आप उपजे है तिस सम्बन्धी संयोग रूप वा भिन्न रूप परद्रव्य हस्तादि अंगरूप वा धन, कुटुम्ब, मन्दिर, ग्राम आदिक तिनको अपने मान उनको उत्पन्न करने के लिये वा सम्बन्ध कायम बना रहने के वास्ते उपाय करना चाहे है। वा सम्बन्ध हो जाने पर सुखी होय मग्न होना, वा इनि के वियोग में दुःखी होना, शोक करना, वा ऐसा विचार आना कि मेरे कोई अगाड़ी पिछाड़ी नाहीं है इत्यादि रूप आकुलता का होना उसी का नाम मोह इच्छा है।

बहुरि काहू पर द्रव्य को अनिष्ट मान ता को अन्यथा परिणमावने की या विगाड़ने का वा सत्तानाश कर देनी की इच्छा सो क्रोध है।

बहुरि किसी पर द्रव्य का ऊंचापना न सुहावे वा अपना ऊंचापना प्रकट होने के अर्थ पर द्रव्य सों द्वेषकरके तिनको अन्य था परिणमावने की इच्छा उसका नाम मान है।

बहुरि किसी पर द्रव्य को इष्ट मान तिसको उपजावनेके अर्थ वा सम्बन्ध बना रखने के लिए या उस का विघ्न दूर करने के लिए जो छल कपट रूप गुप्त कार्य करने की इच्छा का होना

उस को माया कहते हैं।

बहुरि अन्य किसी पर द्रव्य को इष्ट कल्पि उन से सम्बन्ध मिलावने की वा सम्बन्ध रखने की इच्छा का होना सो लोभ है।

सो इन चार प्रकारकी प्रवृत्ति का नाम कषाय इच्छा है।

बहुरि पांच इन्द्रियों को प्यारे लगने वाले जे पर द्रव्य तिन को रति रुप भोगवे की इच्छा का होना उस का नाम भोग इच्छा है।

बहुरि क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण आदिक वा काम विकार आदिक को मेटने के लिये परद्रव्यों का सम्बन्ध की इच्छा ना का नाम रोगाभाव इच्छा है।

ऐसे चार प्रकार की इच्छा है तिस में किसी एक ही इच्छा की प्रबलता रहे है बाकी शेष तीन इच्छाओं का गौणता रहे है। जैसे मोह इच्छा प्रबल होय तो पुत्रादिकों के लिये परदेश जाय तहां भूख तृषा शीत उष्णादि की बाधा सहे, आप भूखा रहे, अपना मान मद खोकर भी कार्य करे है, अपना अपमानादिक करावे है, कुल आदिक करे है, धन आदिक खर्च करे है। ऐसे मोह इच्छा प्रबल रहते कषाय इच्छा गौण रहे है।

आप के हिस्से का भोजन वस्त्रादिक पुत्रादिक कुटुम्बों को सुन्दर २ अच्छे २ ल्याय देवे हैं। आपको सूखा बास्या खाने को मिले तो भी खुश रहे। जिस तिस प्रकार अपने भी भोगों को जबर्दस्ती देकर उनको खुश राख्या चाहे है। ऐसे भोग इच्छा की भी गौणता रहे है।

बहुरि आप शरीरादि में रोगादिक कष्टों के आने पर भी पुत्रादिकों के लिए परदेश जाय है। तहां क्षुधा तृषा शीत उष्णादिक की अनेक बाधा सहे है। आप भूखा रह कर भी उन को भोजनादिक खिलावे है। आप शीत काल में आले खरोड़े सो कर भी उनको सूखे और कोमल बिस्तरों पर सुलावे है। ऐसे रोगाभाव इच्छा गौण रहे है। इस प्रकार मोह इच्छा की प्रबलता होय है।

कषाय इच्छा की प्रबलता होने पर पिता आदिक गुरुजनों को मारने लग जाय है; कुवचन कहने लगे है, नीचा पटक (गिरा) दे है, पुत्रादिकों को मारे है, बडाई करे है उनको बेच देवे है. आप मानादिक करे है अपने शरीर को भी कष्ट देकर धनादिक का संग्रह करे है कषाय के वशीभूत होय प्राण तक भी दे देवे है. इत्यादि ऐसे कषायइच्छा प्रबल होने मोह इच्छा गौण हो जाय है।

क्रोध कषाय के प्रबल होने पर—अच्छा भोजनादि नहीं खावे है. वस्त्राभरण आदि नहीं पहिरे है. सुगंध आदि नहीं सूंघे है, सुन्दर वर्ण आदिक नहीं देखे है, सुरीली रागनी आदिक नहीं सुने है। इत्यादि विषय सामग्रियों को बिगाड़ दे है, नष्ट कर देता है, दूसरे का घात कर देता है निंद्य वाक्य, नहीं बोलने योग्य बोल देता है—इत्यादि कार्य करे है।

मान कषाय के तीव्र होने पर—आप को ऊंचा होने का दूसरे को नीचा करने का हमेशह उपाय बण्या रहता है। आप

अच्छा खाने पर सुन्दर वस्त्रों को पहरने पर, सुगन्ध सूँघने पर अच्छे वर्णों को देखने पर सुरीला आवाज के सुनने पर अपने उपयोग को नहीं लगावे है, न कभी उनका चिंतवन करे है न कभी अपने को वे चीजें प्यारी लगे हैं। केवल विवाह आदि आगे मोसरादिक के समय अपने को एक ऊंचा रखने के लिए अनेक उपाय करे है।

लोभ कषाय के तीव्र होने पर अच्छा भोजन नहीं खाय है अच्छे वस्त्रादिक नहीं पहरे है, सुगन्ध उबटनादिक नहीं लगावे है, सुन्दर रूप को नहीं देखे है, अच्छे राग नहीं सुने है। केवल धनादिक सामग्री उपजावे की बात करने की बुद्धि रहे है, कंजूस जैसा स्वभाव हो जाय है।

माया कषाय के तीव्र होने पर—अच्छा नहीं खाय है वस्त्रादिक अच्छे नहीं पहरे है, सुगन्ध वस्तु को नहीं सूंघे है, रूपादिक नहीं देखे है, रागादिक नहीं सुने है। केवल अनेक प्रकार के छल कपट आदि मायाचार का व्यवहार करके दूसरों को ठगने का कार्य किया करे है। इत्यादि प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय की प्रबलता होय तब भोगेच्छा गौण होजाय है, रोगाभाव इच्छा मंद पड़ जाय है।

बहुरि जब भोग इच्छा प्रबल होजाय तब अपने पिता आदिकों को अच्छा नहीं खिलावे है, सुन्दर वस्त्रादिक न पहनावे है इत्यादि। आप ही अच्छा कलाकन्द, बरफी आदि खाने की

इच्छा करे है, खावे है, सुन्दर महीन बहुमूल्य वस्त्रादिक पहरे है घर के व अन्य कुटुम्बादिक भूखे मरते रहे हैं। ऐसे भोग इच्छा के प्रबल होते मोह इच्छा गौण हो जाय है।

अच्छा खाना, पहनना, सूंघना, देखना, सुनना, चाहे है। तहां कोई बुरा कहे तो क्रोध न करे, अपना मानादिक न करे तो भी न गिने, अनेक प्रकार की कपटाई कर भी, दुःखों को भोग कर कार्य सिद्ध करयो चाहे वा भोग इच्छा की प्राप्ति के लिये धनादिक भी खर्चे है। ऐसे भोग इच्छा के प्रबल होते कषाय इच्छा गौण हो जाय है।

अच्छो खानो, पहिरनो, सूंघनो, देखनो, सुननो आदि कार्य के होते पर रोगादिक का होना, भूख प्यास आदि का होना रूप कार्य को प्रत्यक्ष होते जान कर भी उन विषय सामग्री से अरुचि नहीं होय है। जैसे स्पर्शन इन्द्रियकी प्रबल इच्छा के वश होय हाथी गड्ढे में गिरे है, रसना इन्द्रिय के वश होय मछली कांटे लागि मरे है, घ्राण इन्द्रिय के वश होय भ्रमर कमल में जीवन दे देवे है, मृग कर्ण इन्द्रिय के वश होय शिकारी की गोली तें मरे है। इस प्रकार भोग इच्छा के प्रबल होते रोगाभाव इच्छा गौण हो जाय है।

बहुरि जब रोगाभाव इच्छा प्रबल होय तब कुटुम्बादिकों को छोड़ देवे है, मन्दिर मकान, पुत्र आदिकोंको भी बेच देय है। इत्यादि रोग की तीव्रता आये मोह के पैदा होने के कारण

कुटुम्बादि सम्बन्धियों में से भी मोह को सम्बन्ध टूट जाय है, अन्यथा परिणमै है। ऐसे रोगाभाव इच्छा के प्रबल होते मोह इच्छा गौण हो जाय है।

बहुरि कोई बुरा कहो, अपमानादिक करो तब भी अनेक कुल पाखण्ड कर वा धन खर्च करके भी अपने रोग को मिटाया चाहे। ऐसे रोगाभाव इच्छा के प्रबल होते कषाय इच्छा गौण हो जाय है।

बहुरि भूख लागे, तृषा लागे, शीत लागे, गरमी लागे वा पीड़ा इत्यादि रोग पैदा होजाय तब अच्छा-बुरा, मीठा-खारी, खाद्य-अखाद्य का विचार न करे है। बुरी अखाद्य वस्तुको खाकर भी रोग मेटना चाहे है। जैसे पत्थर वा बाड़ का कांटा वगैरह खाकर भी भूख मेटना चाहे है। ऐसे रोगाभाव इच्छा होते भोग इच्छा गौण होय है।

ऐसे एक काल एक इच्छाकी मुख्यता रहे है अन्य इच्छा की गौणता होजाय है; परन्तु मूलमें इच्छा नामा रोग सदा बन्यो रहे है।

जिनके नवीन २ विषयों की इच्छा है उनके दुःख स्वभाव ही तें होय है। जो दुःख मिट गयो होय तो नवीन विषयोंके लिये व्यापार काहे को करे। सो ही प्रवचन सार जी में कहा है:—

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जदि तं णहि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थम्॥

अर्थ—जैसे रोगी के एक औषधि के खाने से आराम हो जाय तब तो दूसरी औषधि का सेवन काहेको करे। तैसे ही एक विषय सामग्री के प्राप्त होने पर ही दुःख मिट जाय तो दूसरी विषय सामग्री काहेका चाहे। जातैं इच्छा तो रोग है और इच्छा मेटने का इलाज विषय सामग्री है। सो एक प्रकारकी विषय सामग्री की प्राप्ति से एक प्रकार की इच्छा दबे है; परन्तु तृष्णा इच्छा नामा रोग तो अंतरंगमे मिटै नाहीं है। इसलिये दूसरी अन्य जाति की चाह और उपज आवे है। ऐसे सामग्री मिलते २ आयु पूर्ण होजाय है और इच्छा बराबर वहां लगी ही रहे है। तब पीछे दूसरी पर्याय पावे है तब उस पर्याय सम्बन्धी वहाँके कार्यनि की नवीन चाह उपजे है। ऐसे संसार में दुःखी हुआ भ्रमण करे है। बहुरि अनिष्ट सामग्री के संयोग के कारणों को और इष्ट सामग्री के वियोग के कारणों को विघ्न मानो हो सो तुम कुछ विचार भी कियो है—जो यही विघ्न होय तो मुनि आदि जे त्यागी तपस्वी तो इनि कार्यनिको चलाय अंगीकार करे हैं। तातैं विघ्न को मूल कारण अज्ञान रागादिक है। ऐसे दुःख वा विघ्न का स्वरूप जान अर उनका इलाज सम्यकदर्शन ज्ञान चारित्र है और इनि के स्वरूप का उपदेश देकर प्रवृत्ति कराने वाला अर्हन्त देवाधिदेव है।

ऐसे दुःख का हर्ता वा विघ्न का हर्ता जान पूजना योग्य है। कदाचित् तुम विषय सुख को कर्ता और रोगादिक विघ्नों

का हर्ता जान पूजोगे, यह कार्य तो पूर्वोपार्जित कर्म के अधीन है तिसतैं तुम्हारे जिनदेव का पूजते भी लौकिक दुःख आदिक वा विघ्न आदिक असाता के उदय से होय है। ऐसी हालत में तुम्हारे जिनदेव को आस्तिक्य किस प्रयोजन के आश्रय थंभेगो सो बताओ। तातैं सबसे पहले दुःख वा विघ्न का स्वरूप निश्चय करः इस प्रयोजन के अर्थ पूजने योग्य है, ऐसे तुम शास्त्रनि के अनुसार गुण वर्णन करो हो। परन्तु तुम्हारे गुणनि को वा गुणधारक गुणीनि को सांचो स्वरूप ज्ञान में तो निश्चय न भयो तातैं पहले स्वरूप निश्चय कर सेवक बनना योग्य है।

तहां वह कहे है कि—अर्हन्त देव को सांचो स्वरूप कहा है सो कहो। ताको उत्तर—

जो निश्चय रूप अंतरंग लक्षण तो केवल ज्ञान, वीतराग आदि पनो है अर बाह्य स्वयं जीवादि पदार्थनि को सांचो मूल वक्तापनो है। सो केवलज्ञान, वीतराग पने की यह सामर्थ्य है।

बहुरि सांचो मूल वक्तापनो है सो केवलज्ञान, वीतराग पनाकी सामर्थ्य है। बहुरि सांचो मूलवक्तापनोंको युक्ति वा प्रत्यक्ष तैं वचन के अविरुद्धपना से समर्थन होय है। तातैं जिनको इनके वचन में युक्ति वा प्रत्यक्ष तैं अविरुद्धपनों सांचो भास्यो है तिन्हीं को इनका केवलज्ञानपना वा वीतरागपना निर्दोष भास्या है ऐसे जानना।

तहाँ यहां संयोग रूप कार्य रूप साधन जो सत्य वचन

तातैं सर्वज्ञ को स्वरूप निश्चय भयो है। बहुरि द्रव्य रूप अर्हन्त देव को स्वरूप परम औदारिक शरीर को धारकर अठारह दोषोंसे रहितपनों, दिगम्बर, आभरणादि रहित, शांतमुद्रा के धारक इत्यादि रूप है।

इति सत्ता स्वरूपम्।

अथ--अर्हन्तदेव का निश्चय आपके ज्ञानमें होने का उपाय लिखिये है। तहाँ यह जीव अनादि से मिथ्यादर्शन अज्ञान कुचारित्र भाव करि प्रवर्ततो संतो चतुर्गति संसार में परिभ्रमण करे है। तहाँ कर्म का उदय कर उपजी जो असमान जाति द्रव्य पर्याय तिस विषै अहं बुद्धि धार उन्मत्त हुआ विषय कषाय आदि कार्यरूप प्रवर्ते है। तहाँ अनादि तैं बहुत काल तो नित्य निगोद हो में व्यतीत हुआ वा पृथ्वी आदि पर्यायों में वा इतर निगोद में व्यतीत हुआ। तहां नित्य निगोद में से निकस पीछे पंच स्थावरनि में उत्कृष्ट रहने का काल असंख्यात कल्प काल प्रमाण है तहाँ तो एक स्पर्शन इन्द्रिय ही का किञ्चित् ज्ञान पाइये है सो उन पर्यायों में जो दुःख यह जीव भोगे है उसको तो जो भोगने वाला जीव है वह जानता है या केवली भगवान जाने है । कोई प्रकार कर्म का क्षयोपशम करि वा त्रस आदिक प्रकृति का उदय करि वे इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय असंज्ञी पंचेन्द्रिय, लब्ध्यपर्याप्तक पर्यायनि में विशेष रूप से दुःख ही की सामग्री पाइये है।

तहाँ भी ज्ञान की मंदता ही है। सो इन पर्यायनि में तो आत्म हितकारी जो धर्म ताका विचार होनेका सर्वथा अभाव है बहुरि तिर्यञ्च पर्याय अवशेष रही तिनमें छोटी अवगाहना वाले वा छोटी आयु वाले जीव तो बहुत हैं अर बड़ी अवगाहना वा बड़ी आयु वाले जीव थोड़े हैं। तिनमें सिंह व्याघ्र सर्प आदि क्रूर जीवों में तो धर्म की वासना नहीं होय अर कदाचित् कोई तिर्यञ्चके वासना होय सो विशेष कर तो देव मनुष्य पूर्व पर्यायनि में धर्म वासना के बल से होय है। अर कोई जीव के लब्धि का बल तैं उपदेशादिक का निमित्त पाय वर्तमान तिर्यंच सैनी पर्याप्तक गर्भज बड़ी अवगाहना वा बड़ी आयु के धारक बैल हरिण आदिक जे जीव हैं तिनके पैदा होय है परन्तु ऐसे जीव बहुत थोड़े हैं।

बहुरि नरक पर्याय दुःख मय ही है तहां धर्म की वासना आदि का पैदा होना महा दुर्लभ है। कोई जीव के मनुष्य तिर्यञ्च पर्यायनि में बनी हुई वासना किञ्चित् रह जाय है तो बनी रहो। बहुरि देव पर्याय में बहुत देव तो भवनत्रिक अर्थात भवन वासी व्यंतर और ज्योतिषियों में नीच पद के धारक हैं तिनके तो मिथ्यात्व- विषय कषाय वा भोगोपभोग सामग्री आदि से विशेष रूप से अनुराग पाइये है। तिस करि घने जीव तो मर कर एक इन्द्रिय होय हैं। बहुरि कोई ऊंचे पद के धारक जीव तो पहले मनुष्य पर्याय में धर्म साध्या है तिस ही के फल से होय हैं। ऐसे जीव थोड़े हैं।

बहुरि मनुष्यपर्याय में बहुत जीव तो लब्ध्यपर्याप्तक हैं तिन का श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण आयु है जातैं संसारी जीव राशि में सर्व मनुष्य उनतीस अंक प्रमाण हैं सो एक इन्द्रिय आदि सर्व जीव राशि में अत्यन्त थोड़ा संख्या मात्र है। तहाँ भी घने जीव तो भोगभूमियां हैं तहां तो देव आदि का वा धर्म कार्यनिका सम्बन्ध ही नाहीं है। बहुरि कर्म भूमि में बहुत जीव तो गर्भ ही में छोटी आयु के धारक मरते देखिये हैं। बहुरि कदाचित गर्भ में पूर्ण अवस्था होय तो जन्म हुए पीछे घने जीव तो छोटी आयु के धारक मरते देखिए है। बहुरि कोई बड़ी आयु पावे तो ऊंचा कुल पावना महा दुर्लभ है। बहुरि पांचों इन्द्रिय पूर्ण पावना वा शरीर आदि सर्व सामग्री उत्तम पावना महा दुर्लभ है बहुरि उत्तम संगति का संबन्ध मिलना वा व्यसनादिक तैं बच्या रहना महादुर्लभ है। बहुरि यातैं अंतरंगमें धर्मवासना वा परलोक का भय वा पाप से भयभीत होना उत्तरोत्तर महा दुर्लभ है।

कदाचित उनकी भी प्राप्ति हो जाय तो मिथ्याधर्ममें वासना का अभाव और उनसे बचे रहने रूप कार्य अत्यन्त दुर्लभ है। बहुरि उन से भी बच जाय तो जैनाभासी जे श्वेताम्बर संवेगा. रक्ताम्बर पीताम्बर आदि वा काष्ठासंघी आदि वा कलिकाल में भई जो मिथ्या धर्मवत् जैनधर्म में प्रवाति उनसे बचना महादुर्लभ है। बहुरि तातैं भी बचना हो जाय तो कुल क्रम करि वा पंचा-यतों के भय करि मिथ्या देवादिकों से बचना हो जाय तो बड़ा भाग्य है परन्तु सांचेदेवादिक तैं वैसी यथावत् विनयादिरूप प्रवृत्ति

न भई। बहुरि वहां भी कोई जीव तो अपने ज्ञान में निर्णय किये बिना ही अज्ञानी साधर्मी के संग में मगन होय विनय वा उज्वलता बढ़ाने वाली द्रव्य रूप पूजा तपत्याग आदि बाह्य क्रिया ही में मगन होय रहे हैं। बहुरि कैयक जीव वक्ता का उपदेश आदिक कहने से स्वरूप निर्णय भी करें, तहां अपने ज्ञान में आगम के आश्रय शिक्षा याद राखे हैं अर वस्तु स्वरूपका ज्ञाना आपको मान संतुष्ट होय रहे हैं अर युक्ति हेतु पूर्वक ज्ञान नाहीं करे हैं। अर कोई हेतु और युक्ति भी सीख ले है तो आगम में कहया है वैसा निश्चय कर वस्तु स्वरूप ठीक भया मान ले हैं। सो जिन मत में आगम आश्रय हेतु स्वानुभव बिना किस अपेक्षा अबाध वा सबाध है—ऐसा निर्णय न करे हैं। बहुरि कोई जीव बाह्य गुणों करि व्यवहार रूप वस्तु का युक्ति पूर्वक निर्णय भी कर ले हैं परन्तु निश्चयाश्रित स्वरूप सांचा न भास्या इससे मिथ्या दृष्टि ही हैं।

ऐसे इस संसारमें अनन्तानन्तकाल परिभ्रमण करता २ ही व्यतीत हुआ है सो अब तुमको कहे हैं—जो इतनी बातों को अब अवश्य ठीक करलो। आगम तैं वा युक्ति तैं वा स्वानुभवतैं; जो संसार में परिभ्रमण ऐसे ही होय है कि नाहीं होय है। वा संसार में ऊपर कही हुई सब बातें दुर्लभ हैं कि नाहीं हैं। सो अब तुम को अनध्यवसायी रहना योग्य नाहीं। यह मनुष्य पर्यायरूप रस पावना महान दुर्लभ है नहीं तो पीछे पछताओगे और कुछ गरज सरैगी नाहीं। अनन्तानन्त जीव ऐसे ही दुःखी हुआ काल पूर्ण करे

हैं सो अब तुम यह अवसर पाया है, मनुष्य पर्याय, ऊंचाकुल बड़ी आयु, पाँचों इन्द्रिय की परिपूर्णता, भले क्षेत्रका वास, सत्सं गति का मिलना, पापसे भयभीत होना, धर्म बुद्धिका पैदा होना श्रावक कुलका पावना, सांचे शास्त्रों का सुनना, सांचा उपदेश-दाता का सम्बन्ध मिलना, सत्य मार्गका आश्रय मिलना, सत्यदेव आदिक के निकट दर्शन पूजा इत्यादिक का करना भक्तिरूप वा आस्तिक्यरूप परिणामोंका होना इत्यादि उत्तरोत्तर महादुर्लभ हैं। सो इस कालमें भी महाभाग्यका उदय करि सर्व बात पाइये हैं।

सो अब तुमको पूछिये है—तुम प्रतिदिन मन्दिरमें आवो हो, सो तुम प्रतिमाजी जो मन्दिर में विराजे हैं तिन्हीं को देव जान सन्तुष्ट होय रहे हो वा तुमको प्रतिमाजी का छोटा बड़ा आकार वा वर्ण, वा पद्मासन, कायोत्सर्ग आदि ही दीखे है या जिनकी यह प्रतिमा हैं तिनका भी स्वरूप भास्या है। सो तुम अपना चित्त विषै विचार देखो। जो नहीं भास्या है तो बिना ज्ञान किसका सेवन करो हो तातें तुमको जो अपना भला करना है तो सर्व आत्म हितका मूल कारण जे 'आप्त' तिनका सांचा स्वरूप निर्णय करि ज्ञानमें लाओ। जातें सर्व जीवोंको सुख इष्ट है अर सुख कर्मों के नाशसे होता है अर कर्मका नाश सम्यक् चारित्रसे होय है, अर सम्यक्चारित्र सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान पूर्वक होय है, अर सम्यग्ज्ञान आगमसे होय है, अर आगम कोई वीतरागी पुरुष की वाणी तें उपजे है, अर वाणी कोई वीतरागी पुरुषके आश्रय है। तातें जे सत्पुरुष हैं तिनको अपना कल्याण के

अर्थ सर्व सुखका मूलकारण जो आप्त अर्हन्त सर्वज्ञ तिनका युक्ति पूर्वक भले प्रकार सबसे प्रथम निर्णय करि आश्रय लेनो योग्य है सो ही कह्या है—

सर्वः प्रेप्स्यति सत्सुखाप्तिमचिरात् सा सर्वकर्मक्षयात् ।
चारित्रात्स च तत्वबोधनियतं सोप्यागमात्सश्रुतेः ॥
सा चाप्तात्स च सर्वदोषरहितो रागादयस्तेपि तत् ।
संयुक्ताः सुविचार्य सर्वसुखदं संतः श्रयन्तु श्रियै ॥

ऐसे रागादि सर्व दोष रहित जे आप्त तिनका निश्चयपना ज्ञान में करना । तहां वह तो अज्ञान रागादि दोषरहित है ही. वा प्रतिमा भी उनकी है ही. वा शास्त्रों में निर्बाध रूप में उनका स्वरूप लिख्या ही है सो अब जिनका उपदेश सुनिए वा जिस के कहे हुए मार्ग पर चलिये वा जिन की सेवा पूजा आस्तिक्य जाप्य स्मरण स्तोत्र नमस्कार ध्यान कीजिये है ऐसे जे अर्हन्त सर्वज्ञ तिनका पहले अपने ज्ञान में स्वरूप तो भास्या ही नाहीं तुम बिना निश्चय किये कौन का सेवन करो हो । सो लोक में तो ऐसे है जो अत्यन्त निष्प्रयोजन बात है ताका भी निर्णय करि प्रवृत्ते हैं । अर आत्महित का मूल आधारभूत जे अर्हन्तदेव तिनका तुम निर्णय किये बिना ही प्रवर्तो हो यह बड़ा आश्चर्य है । अर तुम्हारे निर्णय करनेयोग्य ज्ञान भी भाग्यतें वणि आया है (प्राप्त हुआ है) तातें तुम अवसर को वृथा मत खोओ । आलस्य आदि छोड़ इसके निर्णय में अपने को लगाओ जो तुम को वस्तु

का स्वरूप, जीवादिक का स्वरूप, आपापर का भेद विज्ञान वा आत्मा के स्वरूप का, वा हेयोपादेयका वा शुभाशुभ शुद्ध अवस्था रूप आपके पद अपद के स्वरूप का सर्व प्रकार से यथार्थ ज्ञान होय। तातैं सर्व मनोरथ सिद्ध होनेका उपाय जो अर्हन्त सर्वज्ञ का यथार्थ ज्ञान जिस प्रकार होय सो प्रथम करना योग्य है सो ही कह्या है—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयम्॥

अर्थ—जो द्रव्य पर्यायों करि अर्हन्त को जाने है सो ही आत्मा को यथार्थ जाने है और उसी के मोह का नाश होय है। तातैं जो अर्हन्त का स्वरूप है सो ही अपना स्वरूप है। इतना विशेष है जो वे तो पहले अशुद्ध थे, रत्नत्रयका साधन तैं विभावों को नाश करके शुद्ध भये हैं अर आपके रत्नत्रयका साधन न भया है तातैं बहिरात्मपना बन रह्या है।

ऐसे तुम को श्रीगुरु परम दयालु हैं इस बात में चित्त लगावने की प्रेरणा करते हैं। सो तुम भी दर्शनादिक कार्य करो हो हो सो इसमें इतना और करना कि अनध्यवसायी गहली (पागलपने की) आदत छोड़ प्रथम निर्णय कर दर्शनादिक करो जिसमें चित्त भी नीका (अच्छी तरह) थंभे, और सुख भी वर्तमान में उपजे, वा आस्तिक्य बना रहे तब आप और का चिगाया चिगे नाहीं। सो सब से पहले अर्हन्त सर्वज्ञ का निर्णय

रूप कार्य करना यही श्रीगुरु की मूल शिक्षा है। तहां जो जीव प्रमाण ज्ञान के द्वारा अर्हन्तदेव का, आगम का सेवन, युक्ति का अवलम्बन परंपराय गुरुनि का उपदेश स्वानुभव के द्वारा निर्णय कर जो जैनी होयगा सो ही मोक्ष मार्ग रूप सांचा फल पावेगा. सातिशय पुण्य बंध करेगा। अर जो इन बातों द्वारा निर्णय तो न करेगा अर कुल क्रम करि, वा व्यवहार रूप वा बाह्य गुणों के आश्रय वा शास्त्रों से सुनकर वा इनसे अपना भला होना ज्ञातकर. वा पंचायत सम्बन्ध के आश्रय कर जो इनका सेवक होय बाह्य विनयादि रूप प्रवर्तेगा ताके सांचा निश्चय स्वरूप फल तो लगेगा नाहीं केवल पुण्य बंध हो जायगा।

अर जो कुलादि प्रवृत्ति करि. वा पंचायती पद्धति करि वा रोगादिक मेटने के अर्थ अविनयादि रूप अयथा प्रवर्तें वा लौकिक प्रयोजनकी बांछा कर यथा अयथा प्रवर्तें है अर आत्म कल्याणका समर्थन करे है तो पाप बंध ही होय है। तातैं जिनको आत्म कल्याण करना है तिनको इन दश बातों के द्वारा निर्णय कर जो सांचा देव भासे ताका आस्तिक्य न्याय सेवक होना योग्य है। तहां दश बात कौन सी हैं सो कहिये है -सत्ता १ स्वरूप २ स्थान ३ फल ४ प्रमाण ५ निक्षेप ६ संस्थापना ७ नय ८ अनुयोगवर्ण भेद ९ आकार भेद १०। अब इनका सामान्य स्वरूप कहिये है।

१ जो अन्य कोई कहे—अर्हन्त देव नहीं हैं वा अपने मन में ही ऐसा सन्देह उपजि आवे तो युक्ति आदि करि वा औरों

के उपदेश आदि से अर्हन्त देव के होने का आस्तिक्य कहावने का बल अपने चित्त में हो जाना वा अर्हन्त के अस्तित्व की स्पष्ट भावना का हो जाना ताका नाम सत्ता निश्चय है।

२ अर्हन्त देव का बाह्य अभ्यन्तर स्वरूप जैसा है तैसा हो का सांचा निश्चय होना ताका नाम स्वरूप निश्चय है।

३ बहुरि ऐसा सर्वज्ञ देव: सांख्य, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, नास्तिक, मीमांसक, चार्वाक, जैन इन मतोंमें वा वर्तमान काल में श्वेताम्बर, रक्ताम्बर, पीताम्बर, ढूंढिया, संवेगी आदि जैनाभासों में वा और भी जितने मत हैं उनमें कौन में पाइये है ऐसे सत्य स्थान निर्णय करना स्थान निर्णय है।

४ ऐसा सत्य देव के सेवन करने से कौन से फल की प्राप्ति होगी उस का निश्चय करना फल निश्चय है।

५ बहुरि ऐसे देव का निश्चय किस जाति के ज्ञान से होयगा सो निर्णय करना प्रमाण निश्चय है।

६ बहुरि भगवान के एक हजार आठ नाम हैं सो किस नय की विवक्षा से कहचा है सो निश्चय करना नय निश्चय है।

७ बहुरि भावना की अपेक्षा कीजिए कि उन की प्रतिमा का दर्शन आदि क्यों किया जाय है और किस प्रयोजन से किया जाय है। ऐसा निश्चय करना संस्थापना निश्चय है।

८ बहुरि प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्या-

नुयोग इन का स्वरूप कहाँ २ कह्या है सो निश्चय करना अनु-
योग निश्चय है।

९ बहुरि मूल भावनि तैं प्रतिमाजी का आकार छोटा बड़ा क्यों होय है उसका निश्चय करना सो आकार निश्चय है।

१० बहुरि मूल भावनि की अपेक्षा प्रतिमा का वर्ण और अनेक प्रकार का काय कैसे होय है उस का विचार करना सो वर्ण निश्चय है।

इस प्रकार आप के प्रथम स्वरूप निश्चय भया होय तो प्रति पक्षी को समझाने का बल रहै और अपनी आस्तिक्य बुद्धि थंभी रहे है। अगर ऐसा न होय तो प्रति पक्षी की युक्ति खंडी न जाय और संशयादिक बना रहे। तब ताके आस्तिक्य कहां रह्या तातैं पहले इन बातों के द्वारा,अवश्य निर्णय करना सो ही धर्म का मूल है।

सो इस के द्वारा कैसे अर्हन्त सर्वज्ञ का निश्चय करिये सो ताकी तरह कहिए उपाय दिखलाइये है। तहाँ प्रथम ही सत्ता निश्चय जो अर्हन्त देव है हो ऐसे निश्चय होने का प्रबन्ध ऐसे करिये है। तहां कोई वादी कहे वा अपने मन में ही संशय उपज आवे कि—जो तुम सर्वज्ञ कहो हो, सो सर्वज्ञ ही नाहीं। ताको उत्तर दीजिए है—जो तुम सर्वज्ञ का नास्ति कहो हो सो काहे तैं कहो हो। तब वह कहे है—मैं सर्वज्ञ को काहे तैं जानूं कोई ऐसा प्रमाण भास्या नाहीं जिससे सर्वज्ञ जान्या जाय।

तातैं बिना निश्चय हुए वस्तु का संस्थापन करना सो आकाश के फूल के समान है। ताको उत्तर है—कि तुम्हारे अज्ञान अंधकार का समूह फैला हुआ है जातैं प्रमाण करि सिद्ध जो सर्वज्ञ सो भी तुम को न भास्या और तुम नास्तिकपनाका वचन कह्या। सो ही श्लोकवार्तिक में कहा है :—

तत्र नास्त्येव सर्वज्ञो ज्ञापकानुपलम्भनात् ।
व्योमांभोजवदस्त्येतत्तमस्तोमविजृम्भितम् ॥

तहाँ वाको ऐसे पूछिए है— जो सर्वज्ञ का जानने वाला प्रमाण ज्ञान तुम्हारे ही नाहीं है तिससे तुम सर्वज्ञ की नास्ति कहो हो, वा औरों के सर्वज्ञ नाहीं है तातैं कहो हो, वा सर्व मत वालोंके सर्वज्ञ नाहीं है तातैं कहो हो? तहाँ वह कहे है—मेरे नहीं है क्योंकि मुझे सर्वज्ञ नाहीं दीखा है तातैं नास्ति कहूँ हूँ। तब ताको उत्तर दीजिए है—

तुमको न दिखने तैं सर्वज्ञकी नास्ति कहो हो सो अब जो जो वस्तु तुमको न भासे, तिन सबकी नास्ति कहो तब तुम्हारा हेतु सिद्ध होय। तहाँ समुद्रमें जल कितना घड़े प्रमाण है सो उन घड़ोंकी गिनती तुम्हारे ज्ञान में तो नहीं आई: परन्तु समुद्र में जल तो संख्या की मर्यादा लिये हुये अवश्य है और तुमसे बड़े चतुर वा ज्ञानी हैं तिनके ज्ञानमें उस समुद्रके जलकी प्रमाणता आई ही होगी कि इसमें इतने घड़े प्रमाण जल है। सो इस प्रकार तो तुम्हारे स्वसम्बन्धीज्ञापकानुपलंभ नामा हेतुका व्यभिचार आया।

जैसे कोई पुरुष दिल्ली नाहीं देखी तो उसके न देखने से दिल्ली का अभाव तो नहीं कह्या जाय, दिल्ली तो है ही। तैसेंही तुमको सर्वज्ञके देखनेका उपाय तो नहीं भास्या वा सर्वज्ञ न दीख्या तो तुम अज्ञानी हो। तुम्हारे न भासने से सर्वज्ञका अभाव तो नहीं कह्या जाय, सर्वज्ञ तो है ही। इसी प्रकार श्लोकवार्तिक जी में कहा है--

स्वसम्बन्धि यदीदं स्याद् व्यभिचारि पयोनिधेः।
अम्भः कुम्भादिसंख्यानैः सद्भिरज्ञायमानकैः॥

बहुरि जो परसम्बन्धि ज्ञापकानुपलंभ नामा हेतुको गहै अर्थात पर जो अन्य तिनको सर्वज्ञके जाननेका उपाय न भास्या वा सर्वज्ञ न दीख्या तातें परकी अपेक्षा सर्वज्ञको नास्ति कहै है। तहां उनको पूछिए है—कि जो तुमसे पर तो हम भी हैं सो हम कहै हैं हमको सर्वज्ञके जाननेका उपाय रूप ज्ञान भास्या है उससे सर्वज्ञ को हम ने जान्या है। इस लिये तुम पर अपेक्षा सर्वज्ञ की नास्ति कैसे कहो हो। जातैं हम तुमको निर्णय तुम्हारे वचन से सर्वज्ञ की आस्तिक्यरूप कराय देंगे और फिर तुम विरुद्ध वचन कहे जाओगे अर न्याय हुआ जो हमारी सांची रह जायगी सो इसमें मतपक्षरूप परस्पर व्याघात होगा अर जो न्याय में प्रमाण द्वारा इससे सिद्ध न करी जायगी तो हमारी सिद्धि झूंठी रही। तातैं हमको जैसे भासी है वैसी तुमको प्रमाण के द्वारा सिद्ध कराय देंगे। तब तुम्हारा पर सम्बन्धि-

ज्ञापकानुपलंभ नामा हेतु सर्वज्ञ की नास्ति साधने विषै झूठा रह्या। तातैं तुमको परको अपेक्षा सर्वज्ञ को नास्ति मानना योग्य नाहीं। सो ही श्लोकवार्तिक जी में कह्या है :—

परोपगमतः सिद्धः स चेन्नास्तीति साध्यते।
व्याघातस्तत्प्रमाणत्वेन्योन्यं सिद्धो न सोन्यथा॥

बहुरि तुम कहोगे जगत विषै सब को ही सर्वज्ञके दिखने का उपाय न भास्या, वा सर्वज्ञ न दीख्या तातैं सर्व सम्बन्धी सर्वज्ञ की नास्ति कहे है। ताको पूछिए है—तुमको सर्वज्ञ का सबके न दिखने का निश्चय कैसे भया। तहां वह कहे है—जो मैं सबके चित्त की ठीक करके कहू हूं सो ताको कहिए है कि जो सबके चित्त की जाने सो ही सर्वज्ञ सो तुम सर्व के चित्त की जानी?

अर तुम्हारी सब के चित्त जानने की शक्ति की परीक्षा कर लेंगे। जो तुम दूर क्षेत्र वा घना काल की बिना देखी स्थूल बात ही बताय देोगे तो तुम्हारे सब के चित्त की जानिबो सांची मान लेंगे। सो तुमतैं दूर क्षेत्र की वा घने काल की बात बताई जाने की नाहीं तब तुमको सबके चित्त का ज्ञान भया कैसे मानिए। अर भया है तो तुम्हारा सर्वसम्बन्धिज्ञापकानुपलंभ नामा हेतु तो सदोष भया सो ही कह्या है:—

सर्वसम्बन्धि तद्बोद्धुं किञ्चिद्बोधैर्न शक्यते।
सर्वबोधोस्ति चेत्कश्चित्तद्बोद्धा किं निषिद्ध्यते॥

ऐसे तुम्हारे सर्वसम्बन्धिज्ञापकानुपलम्भ नामा हेतु को झूंठा ठहराया।

सो तो जान्या परन्तु परसम्बन्धिज्ञापकानुपलंभ तो तब झूंठा होयगा जब तुमः तुमको जिस प्रकारके प्रमाण के द्वारा सर्वज्ञ को अस्तित्व भास्यो है तिस प्रकार कार हमको भी दर्शाओ जब हमको सांचा निश्चय अस्तित्व का हो जायगा तब हम काहे को पर सम्बन्धिज्ञापकानुलंभ नामा हेतु को सांचा मानेंगे सहज ही अपने आप झूंठा हो जायगा। तब वाको कहिए है—

जो तुम्हारे सर्वज्ञ को अस्तित्व निश्चय करने की अभिलाषा है तो जो तुम्हारे अप्रमाण का चश्मा लग रह्या है उसको उतार कर प्रमाण का चश्मा लगाओ। जातैं अप्रमाण ज्ञान में वस्तु का साँचा निर्णय सर्वथा न होय, प्रमाण ज्ञानतैं ही यथार्थ निर्णय होना कह्या है सो ही शास्त्र में कह्या है—

प्रमाणादिष्टसंसिद्धिरन्यथातिप्रसंगतः ।

जो प्रमाण से ही अपने इष्ट की भले प्रकार सिद्धि होय है। अर जो ऐसा न मानिए, प्रमाण अप्रमाण का विभाग न रहे, सब के इष्ट की सांची सिद्धि होने से अतिप्रसंग नामा दूषण आवे। तातैं वस्तु की साँची सिद्धि प्रमाण ही से होना मानि अप्रमाणका चश्मा दूर करना योग्य है। तब उसने कहा कि मुझे अप्रमाण ज्ञान का स्वरूप बताओ जिसको जान कर दूर करूं। तब ताकों

उत्तर दीजिए है :—

जिस ज्ञान के द्वारा वस्तु का स्वरूप अयथार्थ भासे तिस ज्ञान का नाम ही अप्रमाण ज्ञान है। उसके तीन भेद हैं—संशय विपर्यय और अनध्यवसाय।

तहाँ वस्तु के निर्णय करने में सांचा लक्षण का आश्रय तो न आवे पर पक्ष और सपक्ष में नियत जो साधारण धर्म तिन के आश्रय निर्णय करे। तहां दोनों पक्ष प्रबल भासे तब शिथिल अर्थाङ्कित होय दुतरफा ज्ञान का रहना ताका नाम संशय ज्ञान है।

बहुरि विपरीत कहिए उलटे लक्षण के आश्रय वस्तु के स्वरूप का निर्णय करना तहां अन्यथा गुणों विषैं यथा बुद्धि का करना उसका नाम विपर्यय ज्ञान है।

बहुरि ज्ञेय ज्ञान विषैं तो आवे. अर ताके अभिप्राय. स्वरूप. इत्यादि निर्णय न करना ताका नाम अनध्यवसाय ज्ञान है।

सो ऐसे दोष सहित ज्ञान कर वस्तु के साँचा स्वरूप का निश्चय न होय। तहाँ वह कहे है:—जो सब वस्तुओं का सांचा स्वरूप तो केवल ज्ञान बिना सर्वथा न भासे तो केवली बिना सर्व का ज्ञान क्या मिथ्या ही है? ताका उत्तर श्लोकवार्तिक जी में ऐसा कह्या है :—

मिथ्याज्ञानं प्रमाणं वै न स्यान्मिथ्याधिकारतः ॥

मिथ्याज्ञान तो सर्वथा प्रमाण है नाहीं जातैं शास्त्रों में तो

सम्यक्ज्ञान को ही प्रमाणता कही है। तहां जिस प्रकरण में जिस जातिके ज्ञेयके ज्ञान को बाधा न लगे तिस प्रमाण के प्रकरण में तिस प्रकार तिस ज्ञेय के ज्ञानको सम्यक्ज्ञान ही कहिये है। जातैं मिथ्या ज्ञानसे तो कार्य सिद्धि नहीं होय है। तातैं एकेन्द्रिय आदि पंचेन्द्रिय पर्यन्त सर्व जीवनि के अपने २ इष्टका साधकरूप सम्यक्ज्ञान पाइये है। तातैं केवल ज्ञान विना सर्वज्ञान मिथ्या ही हैं, ऐसा कहना योग्य नाहीं। अपना २ प्रकरण में अपनी २ ज्ञेय सम्बन्धी सांची जानने को स्तोक व विशेष ज्ञान सर्वके पाइये है। जातैं लौकिक कार्य तो सब जीव यथार्थ ही करे हैं सो लौकिक सम्यक्ज्ञान तो सर्व जीवोंके थोड़ा वा घना बनि ही रह्या है। अर मोक्ष मार्ग में प्रयोजन भूत जो आप्त आगम आदि पदार्थ तिनका सांचा ज्ञान सम्यग्दृष्टि हीके होय है अर सर्व ज्ञेयका ज्ञान केवली भगवान के ही है, ऐसा जानना।

बहुरि लौकिक कार्यनि में भी जहां संशय आदिक तीनों ज्ञान आवे है तहां लौकिक कार्य भी बिगाडे ही है। तातैं जो तुम्हारे सर्वज्ञ की सत्ता आदिक का सांचा निर्णयका अभिप्राय है तो अपने ज्ञान मे तीनों दोषों को दूर कर अपने ज्ञानको प्रमाण रूप करो। तब वह कहे है:—त्रिदोष रहित प्रमाण ज्ञान के कितने भेद हैं वा हमारे कौन होने योग्य हैं, वा इस प्रकरण में किस भेद का प्रयोजन पड़ेगा, सो कहो। ताका उत्तर—

प्रमाण ज्ञानके भेद १३ हैं—केवलज्ञान, मनपर्ययज्ञान, अवधि

ज्ञान, स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ज्ञान, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान तर्कज्ञान, अनुमान ज्ञान, आगमज्ञान आदि। तहाँ वह कहे है— इनका स्वरूप कहा है। सो सामान्य रूपसे यहां कहा जाता है। अर विशेष रूपसे प्रमाणनिर्णय में लिखेंगे ।

तहां लोकमें ठहरने वाले जे सर्व द्रव्य वा अलोकाकाश तिनको त्रिकाल वर्ती अनन्तगुण पर्यायों कर सहित एकेकाल यथावत् जाने ताका नाम केवल ज्ञान है ?

बहुरि सरल रूप वा वक्र रूप चितवन करता जो जीव ताका चितवन को जाने उस ज्ञानका नाम मनपर्यय ज्ञान है।

३- बहुरि मूर्तिक पुद्गल के स्कंध को वा सूक्ष्मपरमाणुको एकेकाल एकेक्षेत्रको अपना द्रव्य क्षेत्र कालकी मर्यादाने लिये स्पष्ट जाने ताका नाम अवधि ज्ञान है।

४ बहुरि मन और पांचों इन्द्रियों से जो ज्ञान होता है उसको सांव्यवहारिक ज्ञान कहते हैं। सो पुद्गल के अनन्तानन्त परमाणु के बाहर स्कंध को अपने २ विषय की मर्यादा लिये एके-काल एक ज्ञेय को किंचित स्पष्ट रूप जाने है। तहां स्पर्शन इन्द्रिय तो अपने आठ विषयों को जाने है।

५ रसना इन्द्रिय पांच रसों को जाने है।

६ घ्राण इन्द्रिय सुगंध दुर्गंध रूप जो दो प्रकार की गंध है उसको जाने है।

७ अर नेत्र इन्द्रिय पाँच प्रकार के वर्णों को जाने है।

८ अर श्रोत्र इन्द्रिय सात प्रकार के स्वरों को जाने है।

९ बहुरि पाच परोक्ष के भेदों को कहते हैं। तहां पूर्व में जानी हुई वस्तु का याद आवना सो स्मृति है।

१० बहुरि पूर्व में जानी हुई वस्तु का वर्तमान में जाने हुए ज्ञेय से दोनों काल का सदृशपना ने लिया जोड़ रूप जो ज्ञान ताका नाम प्रत्यभिज्ञान है।

११ बहुरि साध्य साधन की व्याप्ति जो यह साध्य इस साधन से ही सधेगा, और प्रकार नहीं सधेगा ऐसा नियम रूप सहचारी का जानना ताका नाम तर्क प्रमाण है।

१२ बहुरि चार दोषों से रहित साधन से साध्य का जानना; जहाँ साध्य तो असिद्ध साधनगम्य न होय, तहां गम्यमान साधन जो तर्क उस से निश्चय किया होय ताकरि असिद्ध साध्य का जानना ताका नाम अनुमान प्रमाण है।

१३ बहुरि प्रत्यक्ष अनुमान अगोचर जो वस्तु तिनका केवली सर्वज्ञ का वचन के आश्रय ही पदार्थ का निर्णय करना सो आगम प्रमाण है।

तहां अबार (इस समय) इस दुःखमा पंचम काल में केवल ज्ञान मनपर्यय ज्ञान अवधि ज्ञान ये तीन ज्ञान तो इस क्षेत्र में है ही नाहीं। अर पांच इन्द्रिय ज्ञान में सर्व का स्वरूप ग्रहण में आवे नाहीं। अर नेत्रनि करि उनकी प्रतिमाजी का वर्ण वा

आकार वा आसनादि तो दीखे है अर जो सर्वज्ञ का सत्तारूप ज्ञान तो नियम करि जान्या न जाय है। बहुरि मन में स्मृति प्रमाण तो तब होय जब पूर्व में जान्या होय तो याद आवे सो जाके पूर्व में ज्ञान ही न भया होय ताके स्मृति प्रमाण कैसे होय बहुरि आगे पहली जान्या होय अर वर्तमान में वाही को सपक्ष विपक्ष के द्वारा जान कर वा सदृश विसदृशपना का जोड़ रूप ज्ञान होय। अर जिस ने पूर्व में सर्वज्ञ जान्या नहीं वा वर्तमान में जान्या नहीं अर जोड़ रूप ज्ञान जाके होय नाहीं ताके प्रत्यभिज्ञान भी कैसे होय। बहुरि आगम प्रमाण में तो सर्वज्ञ के वचन के आश्रय वस्तुका स्वरूप जान लेना है। सो जिन मत में तो यह आम्नाय है नाहीं, जिनमत में तो यह आम्नाय है जो वस्तु का नामादिक वा लक्षणादिक तो आगम के श्रवण के द्वारा ही जाने, अर मोक्षमार्ग में प्रयोजन भूत जे आप्त आगम पदार्थादिक तिनका स्वरूप तो आगमतें ही सुनकर प्रतीति में ले आवे, इनका तो प्रत्यक्ष अनुमान के द्वारा निर्णय कर आगम में लिखा को सांची मानना। सो अब जे मूल प्रयोजन भूत एकम जो अर्हन्त सर्वज्ञ ताको आगम के सुनने ही तें प्रतीति में ल्याय जो संतुष्ट हो जावे हैं वे भी अज्ञानी मिथ्या दृष्टि ही हैं। यातें अर्हन्त सर्वज्ञ का निश्चय होने में आगम प्रमाण का अधिकार नाहीं है सो ही कह्या है।

प्रत्यक्षानुमानागमैः परीक्षणं विचारः

अर्थ— जो प्रत्यक्ष अनुमान का आश्रय सहित आगममें लिखी हुई प्रयोजन भूत रकम तिनकी परीक्षा करनी ताका नाम विचार है सो सर्वज्ञ का स्वरूप है सो तो मूल प्रयोजन भूत रकम है तातैं केवल इस का आगम के ही आश्रय प्रतीत किया, बिना परीक्षा किये * 'नय करि ही केवल प्रयोजन सिद्ध न होय'। तातैं सर्वज्ञ देव का निश्चय करना है तो पहले नाम लक्षणादि आगम मे सुन पीछे अनुमान तैं निश्चय करना योग्य है। सो कैसे करिये—सो कहिए है—प्रथम तो प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, प्रमिति इन का स्वरूप ठीक कर तुम को सर्वज्ञ का निर्णय करना इष्ट है।

सो तुम तो प्रमाता बनो। अर तेरह प्रमाणनि विषै पांच इन्द्रिय ज्ञान वा पांच परोक्ष प्रमाण ये दश प्रमाण तुम्हारे पाइये हैं सो लौकिक कार्यनि में तो तुम इन को यथा ठिकाने लगाये कार्य सिद्ध कर लेवो हो। अर अब तुमको सर्वज्ञ का निश्चय करना है तो अनुमान प्रमाण रूप अपने ज्ञान को बनाओ। अर तुम प्रमाता बनि अपने प्रमाण रूप ज्ञान को सर्वज्ञ के निर्णय के प्रति लगाओ जो सांचा निर्णय होय। सो यहां अनुमान प्रमाण करि सर्वज्ञ का निश्चय होसी सो अनुमान प्रमाण का स्वरूप समझि अपना ज्ञान को प्रमाण रूप बनावना। तहां प्रथम साध्य साधन के व्याप्ति का ज्ञान जो तर्क प्रमाण पहले हुआ चाहिये, जातैं याके

* (ख पुस्तक में) 'नियम करि प्रयोजन सिद्ध न होय।'

होते ही सांचा अनुमान होय है। सो अब पहले साधन का स्वरूप ठीक करना। तहां साधन का मूल स्वरूप तो यह है:—

जिस के द्वारा साध्य सधै अन्य दूसरे प्रकार न सधै ताका नाम साधन है। उस के अनेक भेद हैं :— १ पररूप २ संयोग रूप, ३ लक्षण रूप, ४ पूर्वचर रूप, ५ उत्तर चर रूप, ६सहचर रूप, ७ कर्ता रूप, ८ कर्म रूप, ९ करण रूप, १० संप्रदान रूप ११ अपादान रूप. १२ अधिकरण रूप, १३ सम्बन्ध रूप, १४ क्रिया रूप, १५ स्वामी रूप, १६ स्वरूप रूप, १७ द्रव्य रूप १८ क्षेत्र रूप, १९ काल रूप, २० भाव रूप इत्यादि साधन के बहुत भेद हैं। सो इतने का तो कुछ स्वरूप लिखिए है —

१ तहां भिन्न पर द्रव्यतैं पर द्रव्य का निश्चय करना. जैसे मंदिर का चित्राम देखि मंदिर बनावने वाला धनी रसीला था ऐसा निश्चय करना, सो यहां मंदिरतैं बनानेवाले पुरुष का निश्चय हुआ सो पररूप हेतु है।

२ बहुरि एकक्षेत्रावगाह रूप सम्बन्ध जो पर द्रव्य तातैं निश्चय करना सो संयोग रूप हेतु है। जैसे खुशमूर्ति को देख कर अंतरंग खुशी का ज्ञान होना संयोग रूप हेतु है।

३ बहुरि लक्षण को देख कर वस्तु का निश्चय करना. जैसे चेतना लक्षण को देखि चैतन्य जीव का निश्चय करना सो लक्षण रूप हेतु है।

४ बहुरि साध्य से प्रथम होनेरूप कर्मको देखि साध्य का

निश्चय करना सो पूर्वचर हेतु है। जैसे कृत्तिका का उदय देखि रोहिणी का निश्चय करना।

५ बहुरि साध्य के पीछे होने वाले हेतु को देखकर साध्य का निश्चय करना, जैसे रोहिणी का उदय देखि कृत्तिका नक्षत्र होयगया ताका निश्चय करना सो उत्तरचर हेतु है।

६ बहुरि जो साध्य के साथ ही साथ होय ताको देखि साध्य का निश्चय करना. जैसे प्रकाश को देखि सूर्य के उदय का निश्चय करना सो सहचर हेतु है।

७ बहुरि जो कर्ता को साधन करि साध्य भूत जो कार्य ताका निश्चय करना जैसे विना चाखे ही लाडू के अच्छेपने का हलवाई के नाम से निश्चय करना कि ये लाडू फलाने हलवाई के बनाये हुए हैं इसलिये अच्छे हैं सो कर्ता रूप साधन है।

८ बहुरि कार्य रूप हेतु को साधन करके कर्ता रूपी साध्य का निश्चय करना. जैसे अच्छे कपड़े के थान को देख कर उस के बुनने वाले कारीगर का निश्चय करना सो कार्य रूप हेतु है।

९ बहुरि करण को साधन करि उसके द्वारा होने वाले कार्य रूप साध्य का निश्चय करना, जैसे किसी के खोटे भावों को देख कर यह कहना कि यह पुरुष नरक जायगा सो करण रूप साधन है।

१० संप्रदान को साधन करके निश्चय करना सो संप्रदान

रूप हेतु है। जैसे रसोई बनाने वाले रसोइया से पूछना कि यह रसोई किस के वास्ते किस क्रिया से बनाते हो। तब उसने किसी क्रिया को बता दिया उससे यह निश्चय होना कि यह रसोई उज्वलता से बनी है उसका नाम सम्प्रदान हेतु है।

११ बहुरि अपादान को साधन करि साध्य का निश्चय करना, जैसे कोई लड़ाई करके घर जाता था उसको देख कर निश्चय करना कि यह घर पर जा कर लड़ेगा, उसको अपादान रूप हेतु कहते हैं।

१२ बहुरि आधार को देखकर आधेय का निश्चय करना, जैसे बढ़िया खेतके नामको सुनकर उसमें पैदा होने वाले चावलों के अच्छेपन का निश्चय करना इत्यादि सो आधार रूप साधन है।

१३ बहुरि सम्बन्ध को साधन करके निश्चय करना, जैसे खराब सम्बन्ध के द्वारा यह निश्चय करना कि यह वस्तु खाने योग्य नहीं है, या इस पुरुष के खोटे (खराब) मनुष्यों का सम्बन्ध है, इससे यह व्यसनी है, इत्यादिक सम्बन्ध रूप साधन हैं।

१४ बहुरि कार्य के प्रारम्भ रूप क्रिया के द्वारा कार्य का भलापन या बुरापन का निश्चय करना जैसे वीणा आदिक को बाजने रूप क्रिया से गाने रूप कार्य का निश्चय करना सो क्रिया रूप साधन है।

१५ बहुरि स्वामी रूप साधन करि वस्तु का निश्चय करना, जैसे मुनियों के यद्यपि भोजन का शुद्ध अशुद्ध पना का निश्चय नहीं आया तो भी जैनी श्रावक का घर पहिचान कर श्रावक के घर आहार करे हैं। यहां कोई प्रश्न करे कि बिना भोजन के शुद्धि का निर्णय किये मुनि आहार कैसे करें ताका उत्तर—दाता जैनी है। सो जिसके जिनदेव का निश्चय है और जिनेन्द्रदेव ही जिसके स्वामी हैं ताके आहार अशुद्ध न होय, ऐसे स्वामी रूप साधन है।

१६ बहुरि स्वरूप के साधन करि वस्तु का निर्णय करना, जैसे किसी के पुत्र को बढ़िया कपड़ा वा बहुमूल्य गहना पहरे देख करि वा उदारता पूर्वक धन खरचते देख करि यह निश्चय करना कि यह भाग्यवान पिता का पुत्र है उसको स्वरूप साधन हेतु कहते हैं।

१७ बहुरि द्रव्य रूप साधन करि वस्तुका निर्णय करना, जैसे यह लाडू अच्छे सर्वथा नहीं होय. क्यो कि इसमें खराब चीनी पड़ी है ऐसे द्रव्य रूप साधन है।

१८ बहुरि क्षेत्र के द्वारा वस्तु का निश्चय करना जैसे—फलाने बढ़िया खेत में यह धान पैदा हुआ है इसलिये यह धान बढ़िया है, ऐसे क्षेत्ररूप साधन है।

१९ बहुरि काल के द्वारा वस्तु का निर्णय करना सो कालरूप साधन है।

२० बहुरि भाव के द्वारा वस्तु का निश्चय करना सो भावरूप साधन हैं।

इस प्रकार साधनों का स्वरूप कह्या सो तो असिद्ध. विरुद्ध अनेकान्तिक, अकिंचित्कर रूप चार दूषणों से रहित जिस से साध्य निश्चय से सधे हा सधे जिस के बिना नहीं सधे सो साधन है। इस से विपरीत साधन रहित रूप है सो साधन वा दृष्टान्त ग्रहण करना सो तर्क प्रमाण है।

बहुरि साध्य तो गम्य न होय और साध न गम्य होय इसमें साधनतैं साध्य का निश्चय करना सो अनुमान प्रमाण है। उस अनुमान प्रमाण के १ स्वार्थानुमान २ परार्थानुमान रूप दोय भेद हैं। तहां प्रमाण के अनुमान रूप परिणम्या जो ज्ञान ताका नाम स्वार्थानुमान है। उसके तीन अंग हैं:—धर्मी, साध्य, साधन इन का ज्ञान भये स्वार्थानुमान होय है। तहां साध्य पना जिस वस्तु में होय उसको धर्मी कहते हैं सो प्रसिद्ध हो है। बहुरि शक्य, अभिप्रेत. अप्रसिद्ध ऐसे तीन लक्षणों को धारण किये होय सो साध्य है। जो प्रमाणता के निर्णय होने योग्य होय सो शक्य है। बहुरि जो प्रमाता के इष्ट होय अर प्रमाता के अंतरंग अभिप्राय लगाय ठीक करना योग्य है सो अभिप्रेत है। बहुरि जो प्रकट न होय सो अप्रसिद्ध है। ऐसे तीन लक्षण जिस में होंय सो साध्य है।

बहुरि जिसमे साध्य का ज्ञान होय और प्रकार न होय सो साधन है। तहां अपने ज्ञान में साधन का बल करि धर्मी विषैं साध्य का निश्चय करना सो स्वार्थानुमान है। बहुरि पर को अपने वचन के द्वारा अनुमान का स्वरूप कहना वा अनुमान करि सिद्ध करने योग्य वाक्य औरों को कहना सो परार्थानुमान है।

तहां पंडितों के सम्बन्ध में दोय अंग अंगीकार करने योग्य हैं:—प्रतिज्ञा और हेतु। तहाँ साध्य सहित धर्मी को वचन है सो प्रतिज्ञा है। जैसे—यह पर्वत अग्नि संयुक्त है। बहुरि जिस में धर्मी विषैं साध्य का पक्का निश्चय होय जाय ऐसा जो साधन ताका वचन सो हेतु है। जैसे—इस पर्वत में धूम पाइये है, तातैं यह पर्वत अग्निमान है। बहुरि स्तोक ज्ञान वालों के दोय अंग तो ये और उदाहरण, उपनय निगमन इनमें से एक, दोय वा तीन शिष्यानुरोधतैं कहने। तहां जिस साध्य को आप साधन देय निर्णय सांचा चाहे तिस के दृष्टान्त का वचन कहना। अन्वय वा व्यतिरेक रूप दो उदाहरण हैं। जैसे पर्वत को अग्निमान सिद्ध करने को अग्नि संयुक्त धूमवान रसोई के दृष्टान्त का वचन कहना। बहुरि दृष्टान्त की अपेक्षा लिये साध्य का वचन कहना सो उपनय है। जैसे—यह रसोई धूमवान है तैसे पर्वत भी धूमवान है। बहुरि हेतु के आश्रय साध्य का निश्चय वचन कहना सो निगमन है। जैसे—यह पर्वत धूमवान है तातैं अग्नि-

मान है ही। ऐसे हेतु पूर्वक निश्चय वचन कहना सो निगमन है

ऐसे तुम को अनुमान का स्वरूप वा भेद कह्या है ताको जानि अपना ज्ञान को अनुमान रूप प्रमाण बनाओ।

अब हमको सर्वज्ञ की सत्ता का निश्चय जैसे हुआ है सो स्वरूप तुमको कहे हैं सो तुम रुचि पूर्वक सुनो। वह निश्चय करने का मार्ग यह है, सो न्याय शास्त्र में कह्या है—उद्देश. लक्षण निर्देश, परीक्षा ऐसे वस्तु का निर्णय अनुक्रम से तीन प्रकार करे हैं। तहां वस्तु का नाम मात्र कहना सो उद्देश है। सो यह तो प्रथम कहना जातैं नाम कहे बिना किसका लक्षण कहा जाय तातैं पहली नाम ही कहना सीखना योग्य है। बहुरि पीछे अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव त्रिदोष रहित लक्षण जिसतैं कि वस्तु का स्वरूप जुदा भास जाय, ताको कहना वा जानना, जातैं लक्षण कहे वा जाने बिना परीक्षा क हेतैं करें। तातैं नाम के पीछे लक्षण कहना वा जानना योग्य है। बहुरि ता पीछे लक्षण का आश्रय लेकर परीक्षा करनी योग्य है। तहां विरुद्ध नाना प्रकार की युक्ति वादी प्रतिवादी कहे तहां तिन के प्रबल वा शिथिलपना के निश्चय करने के लिये प्रवृत्त्यां जो विचार सो परीक्षा है। जातैं ऐसे परीक्षा बिना वस्तु का सांचा स्वरूप जानना वा यथार्थ व्यञ्जन ग्रहण होय है। सो लौकिक में वा शास्त्र में ऐसे ही वस्तु के विवेचन की मर्यादा है सो अब तुम को सर्वज्ञ की सत्ता असत्ता का निश्चय करना आया। तहां प्रथम तो नाम

लिखो पीछे अनेक मतनि के आश्रय लक्षण आदिक करो, पीछे सर्वमतों में कहे जे लक्षण तिनको परस्पर ठीक करो। उस के बाद तुमको प्रबल रूप से सांचा भासे तिस पर पक्का निश्चय ल्यावना योग्य है यह मार्ग है। यदि कोई कहै कि—सर्वज्ञ नाहीं है सो ताका कह्या तो प्रथम ही ज्ञापकानुपलंभ हेतु को तो असत्य दिखाया ही था अब फिर वाको पूछिये है जो तुम सर्वज्ञ की नास्ति कहो हो सो कोई क्षेत्र कोई काल की अपेक्षा कहो हो तो यह तो हम भी माने हैं। अर जो तुम सर्व काल सर्व क्षेत्र की अपेक्षा सर्वथा नास्ति कहोगे तो तुमको हम कहेंगे कि जो सर्वथा अभावरूप होय ताकी वस्तुसंज्ञा कैसे आवे? वा उस की नाम संज्ञा नियम करि न प्रवर्ते सो तुम सर्वज्ञ की अस्ति को लिये हुए विधिरूप वाक्य तो न कहो हो परन्तु तुम तो यह कहो हो जो सर्वज्ञ नाहीं है। सो तुम सर्वज्ञ का सर्वथा अभाव मान्या तो सर्वज्ञ की संज्ञा किसके आश्रय प्रवर्तेगी। तातें न्याय शास्त्रनि विषैं तो यह मर्यादा है कि जो सर्वथा अभाव रूप होय ताकी संज्ञा नाहीं होय है। जैसे नास्ति रूप वचन कहे—जो आकाश का फूल नाहीं है तहां तो यह आया जो वृक्ष के तो फूल हैं तैसे तुम लौकिक दृष्टान्त देवो, जो जिसका सर्वथा अभाव होय तिसकी विधि वा निषेध में संज्ञा चली होय। सो लौकिक में तो ऐसा कोई दृष्टान्त है नाहीं; तातैं सर्वथा अभाव की नाम संज्ञा सर्वथा न होय। तातैं तुम सर्वज्ञ ऐसा वचन कह कर फिर उसका नास्ति

रूप वचन कहो हो सो यह बात असंभव है। देवागम स्तोत्र विषैं भी ऐसा ही कह्या है—

संज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित्।

याका अर्थ—जो जाकी संज्ञारूप प्रतिषेध का वाक्य रूप संज्ञा कहिए। सो वाक्य कथंचिद् सद्भाव रूप जो संज्ञा का स्वामी प्रतिषेध्य पदार्थ ताका आश्रय बिना नाहीं प्रवर्तै है। तातैं जो वस्तु कथंचिद् अस्ति रूप होयगी तिसही की नास्तिकी कथनी कथंचित् संभवैगी। अर सर्वथा अभाव रूप की संज्ञा लेकर नास्ति की कथनी सर्वथा ही न बनै। सो तुम सर्वज्ञ का नाम लेकर नास्ति कही सो सर्वज्ञ ऐसा नाम संज्ञा तो सर्वज्ञ की कथंचित् अस्तिता को जनावै है। तातैं हम तो तुम्हारे सर्वज्ञ का अस्तित्व सिद्ध करै हैं। जो तुम सर्वज्ञ का नाम लेकरि नास्ति कहो हो सो इसी में यह आई कि सर्वज्ञ का सद्भाव कोई प्रकार है ही तभी सर्वज्ञ की संज्ञा बने है ऐसे संज्ञा स्वामी को प्रतिषेध सो ही अपना प्रतिषेध्य जो वस्तु ताकी सिद्धि करै है।

बहुरि तुम कहोगे कि—हम तो सर्वज्ञ के नास्ति का वचन कह्या है सो आस्तिक्य वादी सर्वज्ञ की अस्ति माने हैं तिस अभिप्रायके खण्डन करने के लिये कहा है ताको कहिए है—जो सर्वज्ञ नाहीं है ऐसा बाधा सहित वचन तो न कहना था अर कहना था तो सर्वज्ञ वादी ऐसा माने हैं तिनका श्रद्धान झूंठा है इस प्रकार का कहना चाहिये था। उसका तो परस्पर वाद के द्वारा

निर्णय हो जाता परन्तु तुम को ऐसी असंभव बात बिना विचारे कहना योग्य नहीं था जो सर्वज्ञ ही नाहीं है। सो तुम ने झूठा मत पक्ष करि यह वचन कह्या है। परन्तु आस्तिक्य वादी तो तुम्हारे नास्ति रूप वचन को ही साधन करि सर्वज्ञ के अस्तित्व की पुष्टी करे है। ऐसे तुम्हारे वचन से ही अपनी रकम सर्वज्ञकी अस्तिता की सिद्धि करी।

अर हम जिस साधन के द्वारा अनुमान करि सर्वज्ञ की सत्ता जानी है सो तुमको दिखलाते हैं। सो यहां चार प्रकार के अनुमान करि सर्वज्ञ सत्ता का निश्चय होना दिखावेंगे। तहां एक तो एकोदेश आवरण की हानि को साधन करना, दूसरे थोड़ी बहुत ज्ञेय काहू के प्रत्यक्ष है ताको साधन करना, तीसरा सूक्ष्म आदि पदार्थ को साधन करना, चौथा सूक्ष्म आदि पदार्थ रूप जो उपदेश वाक्य को साधन करना। ऐसे चार प्रकार का साधन है।

सो अब इनका विशेष या इन साधन के आश्रय कैसे सर्वज्ञ का अनुमान करिए सो लिखिए है—

तहां दोष और आवरण की हानि कोई जीव के सम्पूर्ण हुई है क्योंकि संसार विषैं ज्ञान की विशेषता वा कषाय की मंदता उत्तरोत्तर बढ़ती २ पाइये है। तिसतैं यह सर्वज्ञता की सिद्धि करी। जैसे—गुड़ से शक्कर अधिक मीठी है, शक्कर से खांड, खांड से बूरा, बूरा से मिश्री अधिक २ मीठी है। उसको आन

कर स्वजाति एकदेश गुण का उत्तरोत्तर वृद्धि का साधन करि अमृत के सम्पूर्ण मीठापना का निश्चय करे है, अथवा बाह्य आ-भ्यन्तर कारणनि करि एकदेश दोष की हानि को साधन करि काहू के सम्पूर्ण दोष की हानि साधन करि साधिये है। ऐसे एकोदेश की जानपनैतैं सर्वोदेश बात का निश्चय करना सो यह भी एक अनुमान की जाति है सो ही देवागम स्तोत्र विषैं कह्या है—

दोषावरणयोर्हानिर्निश्शेषास्त्यतिशायनात् ।
कश्चिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ॥

सो यहां जीवों के एकोदेश आवरण वा रागादिकी हानि उत्तरोत्तर बढ़ती २ होती जानि ताको साधन करि काहू के सम्पूर्ण भी आवरण वा रागादिक की हानि हुई है। ऐसे अनुमान से सिद्ध किया। बहुरि जो जो ज्ञेय अनुमेय कहिए अनुमान में आवने योग्य हैं सो नियम करि काहू के प्रत्यक्ष गोचर होय ही होय। जैसे अग्नि आदिक है सो अनुमान करि भी जानिए है और कोई उनको प्रत्यक्ष भी जानि ले है तैसे ही ज्ञेय अनुमेय तिन का प्रत्यक्ष होने को दृष्टान्त करि यह अनुमान साध्या। सूक्ष्म अन्तरित दूर पदार्थ हेतु अनुमेय हैं, तातैं कोई के प्रत्यक्ष हैं ही। तातैं जिनके प्रत्यक्ष हैं सो ही सर्वज्ञ है। ऐसे दृष्टान्त अनुमान करि सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध करी। सो ही देवागम स्तोत्र में कह्या है—

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥

अर्थ—जे सूक्ष्म अन्तरित दूर पदार्थ हैं ते काहू के प्रत्यक्ष होय हैं ताका दृष्टान्त—जैसे अग्नि अनुमेय है सो उसको कोई प्रत्यक्ष देख ही ले है। ऐसे दूसरा अनुमान सिद्ध किया।

बहुरि जो पदार्थ ज्ञेय हैं तो उनका ज्ञाता कोई है ही, जातैं ज्ञेय जे मेरु आदिक वा जीव आदिक शास्त्रमें सुन करि बिना देखे ही काहू के कहे हुये वचनों के आश्रय श्रुतज्ञान करि जानिये है। जैसे सूक्ष्म आदि पदार्थ अपने प्रत्यक्ष जानवे में न आये तो भी काहूके द्वारा कह्या शास्त्रान में निर्बाध श्रुतज्ञान करि जानिवे में आवे है। तातें यह निश्चय अनुमान करि सिद्ध किया जो यह जीव आदि वस्तु है तो तिनका सम्पूर्ण स्पष्ट ज्ञाता कोई है। ऐसे तीसरी जातिका अनुमान सिद्ध किया है।

बहुरि सूक्ष्म आदि पदार्थों को जो उपदेश है वह सूक्ष्म आदि पदार्थों को कोई साक्षात जानने वाला है तिसके आश्रय ही प्रवर्त्या है। जातैं सुनिश्चितासंभवद्बाधक प्रमाणोंके लिये उपदेश विद्यमान है ही। तहां हम यह अनुमान सिद्ध करे हैं जो यह उप-देश है तो इसका मूलवक्ता सर्वज्ञ वीतराग ही है ऐसे परस्वरूप कार्यानुमान तैं सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध करी। सो ही श्लोक वार्तिक में कह्या है:—

सूक्ष्माद्यर्थोपदेशो हि तत्साक्षात्कर्तृपूर्वकः।
परोपदेशलिंगाक्षानपेक्षावितथत्वतः ॥

जैसे कोई पुरुष भीतर बैठा हुआ बीन बजावे था सो किसी दूसरे पुरुषने तो साक्षात नहीं देखा परन्तु बीनका बाजा यथावत सुनि करि यह निश्चय किया जो यहां कोई चतुर बाजा बजाने वाला है तैसे ही यहां भी सर्वज्ञ को साक्षात प्रत्यक्ष तो न देखा परन्तु इस सांचा उपदेश रूप साधनतैं सर्वज्ञ की समानरूप सत्ता सिद्ध करी। अर ऐसा सर्वज्ञको निमित्त पाइये है सो निर्णय स्थान निश्चय में लिखेंगे। यहां कोई प्रश्न करे—जो अनादि-निधनश्रुत है सो ही है उसको तो बांचे सुने ताहा के ज्ञान होय जाय इससे सर्वज्ञवक्ता कैसे सिद्ध किया। ताका उत्तर—

जो पदार्थ भी अनादिनिधन है और वस्तुनिका नामादिक कहना भी अनादिनिधन है सो कर्ता तो इनका कोऊ सर्वथा है नाहीं। परन्तु प्रथम तो न्यायशास्त्रों में वचन सामान्य के भी पौरुषेयपना सिद्ध किया है. अपौरुषेय आम्नायका निषेध किया है जातैं यह उपदेश रूप वाक्य पुरुष के आश्रय विना न प्रवर्ते है। शब्द पुद्गलकी पर्याय है सो जीवके आश्रय विना ही प्रवर्तै है। सो ही श्लोकवार्तिक जी में कहा है:—

नैकान्ताकृत्रिमाम्नायमूलत्वेऽस्य प्रमाणता।
तद्व्याख्यातुरसर्वज्ञे रागित्वे विप्रलंभनात्॥

जो तुम सर्वथा अकृत्रिम आम्नाय कहो हो सो इसकी प्रमाणता नाहीं है। जा कारण है तिस आम्नायका मूल व्याख्याता

मानना योग्य है। और जो व्याख्याता अज्ञानी रागद्वेषी को माना जायगा तो उसके कहने में प्रमाणता कैसे आवेगी। जातैं दोषी वक्ता को तो ढोंगी कहिए है। तातैं पूर्ण ज्ञानी रागद्वेष रहित ही मूल व्याख्याता भये आम्नाय की सांची प्रवृत्ति होयगी सो ही दिखलाइये है—जो तुम सर्वथा अकृत्रिम आम्नाय पुरुषका आश्रय बिना ही मानोगे तो आम्नाय तो अकृत्रिम संभवे है। जातैं यह वचन है— 'सिद्धोवर्णसमाम्नायः' अर्थात जो अक्षरनिकी सांची आम्नाय है सो स्वयं सिद्ध है, काहू की करी हुई नाहीं है। तो अक्षर वो जीवादिक वस्तु का नाम षट् द्रव्य से सब स्वयं सिद्ध हैं तातैं आम्नाय तो अकृत्रिम ही है तो भी पुरुष का आश्रय बिना आम्नाय वचन ही आपका स्वार्थने प्रकाशने की सामर्थ्य नाहीं है. तातैं वचन में ही यह शक्ति होय जो बांचे सुने तिनके रूप सांचा ज्ञान करावे तो अनेक मतनिविषै भी अन्यथा वा एक मत विषै भी प्रतिपक्षी ताका सद्भाव क्यों होने दे। तातैं आम्नाय की प्रवर्तन को सांचा राखने वाला कोई वचन का व्याख्याता अवश्य मानना योग्य है।

तहां सो व्याख्याता सर्वज्ञ वीतराग मानोगे तो आम्नायरूप वचन हैं सो तिनके अधीन प्रवृत्यां है। तुम अकृत्रिम आम्नायका यह एकान्त हठ ठहराय सर्वज्ञकी नास्ति काहेको कहो हो। अर जो आम्नाय रूप वचनको व्याख्याता मंद ज्ञानी रागी द्वेषी मानोगे तो उसके वचन में प्रमाणता नाहीं आवेगी। ऐसा वक्ता के कहे सूत्रमें प्रमाणता कैसे आवेगी जातैं अज्ञानता करि तो वस्तुका

स्वरूप भासे नाहीं तब चाहतो अन्यथा आप को जैसे वस्तु का स्वरूप भासे तैसे कह करि पद्धति राखे अथवा आपसे कह्या न जाय वा कहने में बाधा लगती दीखे तो वस्तु का स्वरूप अवक्तव्य कह करि पद्धति राखे। ऐसे तो अज्ञानी वक्ताके आश्रय दोष आये अर जो कदाचित काहूके किञ्चित् ज्ञान होय भी तो राग द्वेष के वश करि, वा अपना विषय कषाय, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ ईर्ष्यादिक प्रयोजन साधने के वास्ते साँच को झूठ कहे उनका प्रमाण नहीं। ऐसे राग द्वेष के आश्रय दोष आया। तहां जिनके दोनों में सामान्य विशेषता होय तिनके भी सांचा वक्तापना का आवना दुर्लभ है। तो जिनके अज्ञान रागादिक दोष प्रबल पाइये है तिनके सांचा वक्तापना कैसे आवे। तातैं अज्ञानी, रागीद्वेषी वक्ता सर्वथा नाहीं होय।

बहुरि तुम जो हठग्राहीपना करि वा मत पक्ष करि दोषवान व्याख्याता के भी प्रामाणिकपना मानोगे तो तुम्हारे मत में अदुष्ट-कारणजन्यपना प्रमाण स्वरूप क्यों कहा है। जो तुम्हारे ऐसा वाक्य है ही 'दुष्टकारणजन्यत्वं प्रमाणस्याप्रमाणत्वम्' जो जब झूठी ठहरे तब वाकी कही आम्नाय प्रमाण रूप कैसे होय। उसकी कही आम्नाय के तो दुष्ट कारणजन्यपना आया। जैसे अबार (इस समय) कपटीन के शास्त्र दुष्ट द्वेषी वक्ताजन्य हैं तैसे आम्नाय के भी शास्त्र भये। या प्रकार अकृत्रिम आम्नाय मानने में वा अज्ञानी रागी द्वेषी वक्ता के मानने में अनेक बाधा आवे हैं। ताका विशेष निर्णय महा भाष्य, अष्ट सहस्री, श्लोक-

वार्तिक आदि न्याय के ग्रन्थों में हेतु युक्ति पूर्वक किया है ताकों जान कर अपना कल्पित वचन प्रमाण भूत नाहीं है ऐसा मानना योग्य है।

अर सांचा वस्तु स्वरूप का वा जीव के कल्याण मार्ग का प्रतिपादन करने वाला वचन है सो सर्वज्ञ वीतराग वक्ता के कह्यातैं ही प्रवृत्यां है यह बात सिद्ध भई सो ही श्लोकवार्तिक जी में कही है—

> प्रबुद्धाशेषतत्वार्थे प्रक्षीणाघातिकर्मणे।
> सिद्धे मुनीन्द्रसंस्तुत्ये मोक्षमार्गस्य नेतरि॥
> सत्यां तत्प्रतिपित्सायामुपयोगात्मकात्मनः।
> श्रेयसा योक्ष्यमाणस्य प्रवृत्तं सूत्रमादिमम्॥

अर्थ—जान्या है सर्व पदार्थ जाने, अर घात किया है घातिया कर्म जाने अर मुनीन्द्रों के स्तुति करने योग्य, मोक्ष मार्ग के दिखलाने वाले, ऐसे वक्ता के सिद्ध होते ही कल्याणकारी जुड़ता जो उपयोग स्वरूप आत्मा और ताकी प्रतिपित्सा जो पूछने रूप प्रवृत्ति ताको होते संते यह सूत्र प्रवर्त्या है। सो जिनमत के शास्त्र हैं तिनमें युक्ति सहित सत्यपना पाइये है जातैं जिनमत में सूत्र का लक्षण यह कह्या है—'हेतुमत्तथ्यं सूत्रम्' सो ऐसे सूत्र असर्वज्ञ द्वेषवान वक्ता होते कैसे प्रवृत्ते। जैसे बृहस्पति आदि नास्तिक वादी तिनके सूत्र सांचा वक्ता बिना ही प्रवृत्ते हैं तैसे जिनमत के सूत्र नाहीं है। सो जिन शास्त्रों के वचन विषैं

सुनिश्चितासंभवद्बाधकपणा है सो तो सत्यता ने सिद्ध करे है अर सत्यता है सो इन वचनों के सूत्रपनाने प्रकट करे है, अर सूत्रपना है सो सर्वज्ञ वीतराग का प्रणीतापनाने सिद्ध करे है।

सो यह अबार (इस समय) काल में सांचा वस्तु का स्वरूप दर्शानेवाला वा सांचा मोक्षमार्ग का सूत्र तो पाइए हो है सो जिन के ज्ञान में जिन वचनों के आगम का सेवन, युक्तिका अवलम्बन, परंपरा गुरु का उपदेश, स्वानुभव इन के द्वारा प्रमाण नय निक्षेप अनुयोग करि निश्चय भया है तिन ही जीवों को वचन का सांचा सत्यपना भासे है अर तिन ही को ये वचन सांचे सूत्र रूप भासे हैं, अर तिनही को ऐसे सूत्रों का कहने वाला वक्ता सर्वज्ञ वीतराग देव ही भासे है। ऐसे ये भेद विज्ञानी जीव हैं तिनही को जहां केवली का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं तो संयोग रूप का कार्यरूप साधन के द्वारा सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध भई है।

बहुरि अबार इस काल में केवल ज्ञानी का प्रत्यक्ष दर्शन नाहीं अर उनकी तदाकार व अतदाकार स्थापना का दर्शन है तहां पररूप कार्य के साधनतैं सत्ता की सिद्धि होय है। ऐसे जो सर्वज्ञ की नास्ति सर्वथा कहे है ताको सर्वज्ञ की सत्ता जैसे सिद्ध भई है तैसे सत्ता सिद्ध करने का उपाय दर्शाया है। सो अब जिनको आत्म कल्याण करना है तिनको पहला ऐसे उपाय से वचन का सत्यापना अपने ज्ञान में ठीककर पाछे गम्यमान भया जो सत्य रूप साधन ताके बलकरि उपज्या जो अनुमान तातैं सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करि श्रद्धान, ज्ञान, दर्शन, पूजन, भक्ति, स्तोत्र, नमस्कार आदि करना योग्य है।

अर जो सत्ता निश्चय तो न करे है; कुलपद्धति करि, वा पंचायती के आश्रय करि मिथ्या धर्म बुद्धि से दर्शन पूजादि रूप प्रवर्ते है वा मत पक्ष का हठग्राहीपना करि औरों को नाहीं भी माने है अर तिनही का सेवक वणि रह्या है तिनको नियम करि अपने आत्म कल्याण रूप कार्य की सिद्धि न होय तातैं अज्ञानी मिथ्या दृष्टी ही है। जातैं जिनसे सर्वज्ञ की सत्ता का ही निश्चय न कियागया तो स्वरूप का निश्चयादि किस प्रकार होयगा।

अर कोई कहेगा— सत्ता का निश्चय हमसे न भया तो कहा भया, वे देव तो सांचे हैं तातैं पूजा आदि करना विफल थोड़ा ही जाय है। ताका उत्तर जो किञ्चित तुम्हारी मंद कषाय रूप परिणति हो जायगी तो पुण्य बंध तो होता जायगा परन्तु जिनमत में देव का दर्शन करि आत्म दर्शनरूप फल होना कह्या है सो तो नियम करि सर्वज्ञ की सत्ता जाने ही होयगा, अन्यथा न होयगा सोही प्रवचनसारजी में कह्या है। बहुरि तुम लौकिक कार्यों में तो ऐसे चतुर हो जो वस्तु का सत्तादि निश्चय किए बिना सर्वथा न प्रवर्तो अर यहां तुम सत्ता निश्चय भी न करो गहली (पागल) अनध्यवसायी हुआ प्रवर्तो हो सो यह बड़ा अचरज है। तातैं श्लोक वार्तिक जी में कह्या है:———

कथमनिश्चितसत्ताकः स्तुत्यः प्रेक्षावतां·········आदि।

अर्थ—जिसके सत्ताका निश्चय न भया सो परीक्षा वाला

कैसे स्तवन करने योग्य है। तातैं तुम सर्व कार्योंसे पहले अपने ज्ञानमें सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध करो यही सर्व धर्म का मूल है और यही जिनमत की आम्नाय है। बहुरि कोई प्रश्न करे कि धर्म अधर्म का उपाय सहित हेयोपादेय तत्व यही काहू के प्रत्यक्ष है ऐसे तो कहना और सकल पदार्थ प्रत्यक्ष हैं ऐसा नाहीं कहना। ता को उत्तर दीजिए है—जोतुम यह प्रश्न कर्या सो ऐसे नहीं है—

जातैं सकल पदार्थ प्रत्यक्ष हैं ऐसा हुये विना धर्म, अधर्म हेय, उपादेय तत्व इनका भी प्रत्यक्षपना न बने और जो उपचारि करि सकल पदार्थ प्रत्यक्ष कहोगे तो तुम महिमा के लिये यह बात कही उसमें यह गुण तो सांचा न आया तब झूठे मत वालों का कहना भया।

जातैं यह नियम है—जाके सकल पदार्थ सांचा प्रत्यक्ष न भया ताके कोई वस्तु की प्रमाणता नाहीं है। बहुरि वह कहे है—जैसे सर्वज्ञवादी कहे है कि किंचित् ज्ञानी जो मैं ताको सर्वज्ञ का श्रद्धान जैसे भास्या है अनुमान करि तैसे ही सर्वज्ञ के ज्ञाता पहले भये हैं तथा अब हैं वा आगामी होयगे। ते ये सर्वज्ञ नाहीं कहे है अर जो हम ऐसा कहेंगे—जो किंचित ज्ञानी जो मैं ताके जैसे सर्वज्ञका सद्भाव न भास्या तैसे ही पूर्वमें भी सर्वज्ञ की सत्ता का सद्भाव काहू को भास्या नाहीं, वा अबार काहूको भासे है नाहीं तथा आगामी किसीको भासेगा नाहीं। जातैं जैसे कायवान हम पुरुष हैं तैसे ही और हैं। हममें और दूसरों में विशेष कहा है। सो यह बात अयुक्त है—

जातैं सर्वज्ञका अभाव साधने का ज्ञापकानुलंभ नामा हेतु दिया था सो तो हम झूठ कर ही दिया अर सर्वज्ञ का सद्भाव सिद्ध होनेका उपाय तुमको करना है तो स्याद्वाद करो जैसे हम अनुमान सिद्ध करि चित्त लगाया है तैसे तुम भी चित्त लगाओ तब सर्वज्ञ की सत्ता अवश्य भासैहोगी। अर तुम यह हेतु दिया जो मैं मनुष्य, तैसे ही स्याद्वादी मनुष्य हमको तो न भास्या स्याद्वादी को भास्या, सो ऐसी स्याद्वादमें क्या विशेषता है? सो यह हेतु तुम असत्य दिया है—जातैं जगत विषैं मनुष्य शरीरवान तो सर्व ही एक जाति के हैं परन्तु तिनमें इतना विशेष तो अबार भी प्रत्यक्ष देखिए है जैसे कोई मूर्ख है, कोई के हीरा मोती इत्यादि वस्तुनि की कीमत का ज्ञान है कोई के नाहीं है, कोई के सराफी का ज्ञान है, कोई के बजाजी का ज्ञान है, कोई के शास्त्रों का ज्ञान है, कोई के रोग का ज्ञान है, कोई के नहीं है, कोऊ दुष्ट बुद्धि है, किसी के धर्म बुद्धि है, किसी के पाप बुद्धि है—तैसे ही तुमको सर्वज्ञ का सद्भाव न भास्या अर स्याद्वादी को भास्या तो इसमें विरोध कहाँ आया।

एक यह तो है—जो तुमको स्याद्वादी का सर्वज्ञ का सद्भाव भासने की परीक्षा करनी है तो तुम उनको पूछो। अर पीछे उनको स्वार्थानुमान के द्वारा सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध भई होयगी तो तुमको परार्थानुमान के द्वारा सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध कराय देंगे। और जो तुम उनसे चतुर होय निर्णय करनेका

अर्थी होय पूछोगे अर उनते हेतु के आश्रय सांची सिद्धि न कराई जायगी तो नियम करि स्याद्वादी है ही नाहीं। जैसे और लौकिक अज्ञानी जीव हैं तैसे वे भी जानने। तातैं लौकिक जीव विषय कषायादिकके कार्य पर्याय बुद्धि रूप हैं तिनमें मगन होय विचक्षण बनि रहे हैं तैसे ये झूठे स्याद्वादी कहाय बुद्धि रूप जो पूजा दान तप त्यागादिक हैं तिनमें मगन होय धर्मात्मा बनि रहे हैं। सो यह तुम नियम करि जानो--जिसके सर्वज्ञ की सत्ता का निश्चय नियम करि हुआ होयगा वही स्याद्वादी है।तातैं नरत्व, कायमानपणा आदि हेतु देकरि स्याद्वादी के सर्वज्ञ की सत्ता का सद्भाव भासने का निषेध है सो असंभव है। सो ही श्लोक- वार्तिक जी में कहा है—

आसन् संति भविष्यन्ति बोद्धारो विश्वदृश्वनः।
मदन्येपीति निर्णीतिर्यथा सर्वज्ञवादिनः ॥१॥
किंचिज्ज्ञस्यापि तद्वन्मे तेनैवेति विनिश्चयः।
इत्ययुक्तमशेषज्ञसाधनोपायसंभवात्॥२॥
यथाहमनुमानादेः सर्वज्ञं वेद्मि तत्त्वतः।
तथाऽन्येपि नराः संतस्तद्बोद्धारो निरंकुशाः ॥३॥

इत्यादि सर्व जिनमत की निर्बलता दिखाई सो यह अवस्था जैनाभासी जिनको मत का आम्नाय वा वस्तुओं के स्वरूप का वा आपापर के कल्याण का ज्ञान तो न भया होय अर कुलादिक वा पंचायत आदिका आश्रय करि पूजा तप, त्यागादि रूप प्रवर्त हैं अर जैनी कहावे हैं, तिनके ही है। जातैं विशेष ज्ञान

न होय तो जो मोक्ष मार्ग की प्रयोजन भूत रकम है तिनका ज्ञान निर्णयरूप हेतु पूर्वक होना चाहिये। जातैं यह साँचे जैनी होयँगे ते प्रयोजन भूत रकम में अन्यके द्वारा बाधा सर्वथा आने देंगे नाहीं: अर बाधा देखि आपके तलाकपना न आवे है। अर आप सबका मन रंजायमान करने केलिये मंदकषायी शीतल हुआ ही रहे अर वार्तालाप करि बाकी बाधाका न खंडन करे ते जैनाभासी मिथ्या दृष्टि ही हैं।

जातैं जैनी होयंगे सो अपने कानों मे जिनमतकी बाधाके वचन कैसे सह सकेंगे सो ही श्लोकवार्तिक जी में कह्या है—

प्रतीतिविलोपो हि स्याद्वादिभिर्न क्षमं सोढुं।

अर्थ—जे स्याद्वादी हैं तिन करि अपना प्रतीति जो श्रद्धान ताको विलोप जो अन्योक्ति करि सदूषणपनो नहीं सह्यो जाय है जातैं दूषण सहित सदोष श्रद्धान होने मे पीछे निर्दोष कहिए दूषण रहित श्रद्धान को आश्रय नाहीं होय है।

इति सर्वज्ञ सत्ता स्वरूप सम्पूर्णम्

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान।
नमों ताहि यातैं भये. अरहंतादि महान॥

